अनोखी कथाएं

प्रकाशक:

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला

पारसनाथ जैन मन्दिर, गुलाब वाटिका, लोनी रोड़, दिल्ली

अनोखी कथाएं

भाग-4

ब्र.धर्मचंद्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

अनोखी कथाएँ

सम्पादन

ब्र० धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

भाग (4)

प्रकाशक

आचार्य धर्मश्रुतग्रन्थमाला

दिल्ली

- प्रेरणा : क्षु० राजमति माता जी
- विधान : अनोखी कथाएँ भाग पांच
- संकल्न एवं संपादन: धर्मचंद शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
- प्रकाशन वर्ष : 2001
- पुष्पं नं : 1
- मूल्य : 20 रुपये
- प्रकाशक : आचार्य धर्म श्रुतग्रन्थ माला
- प्राप्ति स्थान : जैन मंदिर गुलाव वाटिका लोनी लोड दिल्ली

अनुक्रम

विषय	पेज सं
आर्तध्यान का फल	1
धन वैभव छोड़ा	15
आहार दान का फल	26
वृषभ सेना	28
णमोकार मंत्र का महा प्रभाव	31
समस्या देह धरे का कहाँ फल पायो	40
जिसे कि हमें प्राप्त करना है	41
तीर्थंकर नेमि कुमार की वीरता	44
मानतुंग की भक्ति	45
मूर्ति का महत्व	47
क्रोध की औषधि	48
अक्रोध की परीक्षा	50
प्रतिभा पूर्ण उत्तर	52
सेठ हरसुखराय	53
अब हम अमर भये ना मरेगें	59
आत्मा रूपी बगीचा	59
मनहूस कौन	60

बुराई के बदले भलाई	62
बालक की बुद्धि	63
पर दुःख कातरता	65
आधा अंग सोने का	66
निर्मोही परिवार	72
स्वर्ग का द्वार	75
सर्वतो भद्र साधु राज	80
महान तत्व ज्ञानी	80
धर्म ध्यान	83
आगमोक्त आचरण	83
पुण्य संचय	84
विवेक दृष्टि	85
लोकोत्तर महात्मा	86
आध्यात्मिक प्रहरी	87
आश्चर्य प्रद व्यक्तित्व	88
युग निर्माता	88
अभय वाणी	89
मंगल वाणी	90
कामना	91

आर्तध्यान का फल

जंबू द्वीप के कुरु जगल नाम का देश है। इसमें अवन्ति नाम की नगरी है। इस नगरी का राजा अनुपरिचर नाम का था। इसकी पटरानी थी पदमावती, प्रेमावती, सुप्रभा, कनकप्रभ इन पटरानियों मे पदमावती का अग्रस्थान था इनके पुत्र का नाम अनंतवीर्य था अन्य रानियों में ५०० पुत्र उत्पन्न थे। मांडलिक राजा इसे नमस्कार करते थे। इसकी सभा में सदा नाच गाना होता रहता था।

एक दिन वनमाली ने आकर वसंत ऋतु में वन बिहार के लिए कहा। सभी सेना राजकुमार अस्त्र–शस्त्र लेकर चल दिए। वन में सौंदर्य को देख लता निकुंजों में विश्राम किया। और रत्न मणियों से निर्मित घाटों सोपानों वाले रंग बिरंगे जल से युक्त तालाब में जल क्रीड़ा से युक्त लिए प्रवेश किया। तालाब का जल कुंकुम, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि से सुगंधित किया गया। उसके घाटों पर मणियों के चौके पूरे गए थे। सोपानों पर सुगंधित पुष्प बिछाये गए थे। राजा अपनी महारानी के साथ जल क्रीड़ा में मग्न था।

इसी बीच विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीरथ अकलापुरी का निवासी ब्रजजंग नाम का विद्याधर अपनी स्त्री मदनवेगा के साथ आकाश मार्ग से आ रहा था। मदनवेगा की दृष्टि तालाब में जलक्रीड़ा करते हुए अनुपरिचर राजा पर पड़ी तो वह कहने लगी हम लोग पक्षी की तरह आकाश में घूमते रहते है। देखिए यह राजा कितना सुखी है अपने समस्त परिवार के साथ आनंदपूर्वक बिहार कर रहा है। हम लोग केवल नाम

के विद्याधर हैं। पर वास्तव में हमारे जीवन में तनिक भी सुख नहीं है। हमसे अधिक सुखी तो यह राजा है। इसने किस प्रकार का सुंदर तालाब बनवाया है। इस तालाब का जल भी कितना सुगंधित और स्वस्थ है। वास्तव में यह धन्य है मनुष्य जीवन के लौकिक सुखों को भोग रहा है।

ब्रजदड़ को अनुपरिचर राजा की यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। वह अपनी स्त्री को अलकापुरी में छोड़कर पुनः वहां पर आया और एक बड़ी सी शिला लेकर उस तालाब को ढक दिया। राजा रानी उसी तालाब के भीतर रह गए। यद्यपि उन्होंने बाहर निकलने का पूर्ण प्रयत्न किया पर वे प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। रानियों ने राजा से कहा देव अब दुख करने से कुछ नहीं होने वाला है। पूर्व जन्म कृत कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। शुभ–अशुभ कर्म का उदय किसी को नहीं छोड़ता अब शांतिपूर्वक आई हुई विपत्ति को सहना चाहिए। घबराने या विलाप करने से कुछ नहीं होने का है। स्त्री, पुत्र, धन–दौलत सब यहीं पर रहने वाली वस्तुएं हैं। इनमें मोह करना व्यर्थ है। समय आने पर कोई किसी की सहायता नहीं करता। चिन्ता, दुख, ग्लानि करने से कुछ भी हाथ आने का नहीं है। इस जीव ने पूर्व जन्म में जैसे शुभाशुभ कर्म किये हैं। उनका फल इसे भोगना ही पड़ता है। अब मृत्यु से इसे कोई बचा नहीं सकता। अतः भगवान जिनेन्द्र देव के चरणों का ध्यान कीजिये। वीर वहीं है जो मृत्यु का वीरता पूर्वक आलिंगन करें। और तनिक भी विचलित न हो। हे– देव अब परिग्रह का मोह छोड़ संन्यास धारण करना चाहिए। यही कल्याण करने वाला है। इसी के द्वारा

मनुष्य का उपकार हो सकता है। मरते सयम जो व्यक्ति मोह करता है वह अपना अहित कर लेता है। अतएव अब धन धान्य वैभव आदि का त्याग कर आत्म कल्याण में लगना चाहिए। महाराज ब्रह्मदत्त चक्री समान अपनी गति मत बिगाड़िये। परिग्रह का मोह बड़ा ही अहित कर होता है। आचार्यों ने परिग्रह के मोह को समस्त पापों की खान माना है। कोई जीव परिग्रह का त्याग किए बिना अपना हित साधन नहीं कर सकता है।

मोही राजा ने धन धान्य वैभव राज्य परिवार के आसक्त चित्त होकर मरण किया। लाखों तरह समझाए जाने पर भी राजा का मोह नहीं छूटा। आर्तध्यान में लीन रहा। स्त्री पुत्रों का नाम ले कर विलाप करते हुए उसने प्राण छोड़े जिससे उसी उद्यान में मरकर अजगर हुआ। रानियों ने समस्त परिग्रह त्याग कर संन्यास धारण किया जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में सागरों की आयु प्राप्त कर आनंदकान्ता, सुकान्त अमिताकांत नामक देव हुआ। जब राजकुमारों और सामंतों और रानियों सहित अनुपरिचर महाराज की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ वे सभी दुख में संलग्न हो गए तालाब में रखे गए पत्थर को देखकर कहने लगे यह कार्य किसी व्यंतर या विद्याधर का है। पूर्व जन्म के बैर के कारण ही ऐसा करने लगे और नाना प्रकार से दुख प्रकट करते हुए चिंतित हुए। अनंतवीर्य ने सबको समझाया और कर्म को विचित्रता को स्वरूप बताते हुए धैर्य प्रदान किया।

शुभ मुर्हूत में अनंतवीर्य का राज्याभिषेक कर दिया गया। सारे कार्य पूर्वव्रत चलने लगे। एक दिन इस नगर में

अवधिज्ञानी सारस्वता नाम के आचार्य संघ सहित पधारे व आवन्ति के उद्यान में एक मनोहर शिला पर आसीन होकर तपस्या करने लगे।

अनंतवीर्य मुनि संघ का समाचार पाकर परिजन पुरजन सहित मुनिराज की वंदना के लिए गया और निकट पहुंच कर तीन प्रदक्षिणा दीं और अष्टद्रव्यों से पूजा की। पश्चात् मुनिराज का उपदेश सुनने लगा। धर्मोपदेश श्रवण करने के अनन्तर उसने हाथ जोड़ कर मुनिराज से पूछा– मेरे माता–पिता का मरण कैसें हुआ है। उनके ऊपर वृहद शिला कैसे रखी गई।

अवधि ज्ञान द्वारा बातों को जानकर मुनिराज बोले–वत्स ब्रजदड़ नाम का विद्याधर अपनी पत्नी मदनवेगा सहित भ्रमण करता हुआ वहां आया। अपनी स्त्री द्वारा की गई राजा की प्रशंसा उसे अच्छी न लगी। पत्नी को अलकापुरी में छोड़कर एक वृहद शिला सरोवर पर ढक दिया गया है। जिससे वहीं अनुपरिचर और रानियों की मृत्यु हो गई। अनंतवीर्य ने पूछा– हे स्वामिन उनकी मृत्यु कैसे हुई। यह बतलाने की कृपा करें। मुनिराज ने कहा– तुम्हारी माताओं ने समस्त वस्तुओं से ममत्व छोड़ कर संन्यास धारण किया था। जिससे वे सौधर्म स्वर्ग में देव हुई हैं। और अनुपरिचार को अंत में मोह ने सताया जिससे वह उसी वाटिका में अजगर पर्याय को प्राप्त हुआ है। अनंतवीर्य माताओं की सुगति और पिता की दुर्गति जान कर आश्चर्य चकित रह गया। उसने विचारा यह जीव परिणामों के अनुसार सुगति और दुर्गति प्राप्त करता है। अतः वह मुनिराज से हाथ जोड़ कर कहने लगा। प्रभो आप मेरे

पिता को थोड़ा कष्ट करके ऐसा उपदेश दीजिये जिससे वह तिर्यंच गति को छोड़कर अपना आत्म कल्याण कर सकें। मुनिराज बोले– अभी उस अजगर को उपदेश देने से आपके पिता के जीव सर्प को जाति स्मरण हो सकता है तथा जाति स्मरण होते ही स्वर्ग से रानियों के जीव भी वहां आ जाएंगे। और उन्हें सम्यक उपदेश देने लगेंगे। जिससे परिग्रह आसक्ति में होने वाली हानि समझ जाएंगे और संसार से ममत्व छोड़कर अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे। हमारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे ही समझाने से उसका कल्याण हो सकता है। जैनधर्म एक ऐसा अमृत है किसी भी अवस्था में सेवन करें लाभ ही लाभ है। यह धर्म सभी जीवों का कल्याण करने वाला है अनंतवीर्य मुनिराज को नमस्कार करके पिता के जीव अजगर के पास आया। और उसे नमस्कार कर कहने लगा–स्त्री होकर आपकी पत्नीयों ने परिग्रह छोड़ने के कारण देव पद प्राप्त किया है। सांसारिक पदार्थों की वांछा तथा परिग्रह की लालसा बड़ी हानि कारक है। आपने पुरुष पर्याय प्राप्त कर शूरवीरता के अनेक कार्य किए परन्तु मरण के समय धन धान्य से मोह लगा रहा। जिससे आपको यह नीच पर्याय की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार देव समझाकर वहां से चले गए। अनंतवीर्य भी उसे संबोधन देकर चला गया और मुनिराज के पास आकर सारा वृतान्त कहा।

मुनिराज बोले– अनंतवीर्य बस सर्पराज की आयु अब केवल १५ दिन की है।

अनंतवीर्य– प्रभो। आप एक बार ससंघ उनके उपकार के लिए अवश्य चलें। आपके वहां पहुंचने पर अवश्य ही उनका

कल्याण होगा।

अनंतवीर्य के आग्रह को स्वीकार कर मुनिराज अजगर के पास गये। बोले–सर्पराज अब तुम्हारी आयु १५ दिन शेष है। अतः मोक्ष लक्ष्मी देने वाले व्रतों को स्वीकार कीजिये अहिंसा में ही धर्म है इस प्रकार समझाकर उसे व्रत दे दिए। मुनिराज १५ दिन तक निरन्तर उस अजगर को उपदेश देते रहे और अंत समय निकट जानकर बोले– तुम्हारी आयु अब समाप्त हो रही है। अब शरीर से मोह छोड़कर आत्मकल्याण में प्रवृत्त होना चाहिए। भेद विज्ञान द्वारा अनेक भवो द्वारा संचित पाप इसी भव में समाप्त करने का उद्यम करना पड़ेगा। यही श्रेष्ठ है। अब संन्यास मरण धारण करना परम आवश्यक हैं मुनिराज ने संसार की क्षणु भंगुरता, वैभव की अस्थिरता का सुंदर वर्णन किया। तथा संन्यास मरण धारण करने पर बहुत जोर दिया। समाधि मरण का महत्व बतलाते हुए मुनिराज कहने लगे। एक भव में ही समाधि धारण करने से जीव अपना कल्याण कर लेता है। समाधि मरण से आठ भव पश्चात अवश्य निर्वाण सुख मिलता है। वस्तुतः रत्नत्रय के समान इस जीव की भलाई करने वाला अन्य कोई नहीं है। यही संसार से श्रान्त जीवों को सुख और शांत देने वाला धर्म है। जो इस धर्म को भूल जाते हैं वे अनंत काल तक संसार भ्रमण करते रहते हैं।

इस प्रकार १५ दिनों तक उपदेश सुनते रहने से उस अजगर के परिणामों में शांति थी ब्रजदंड का मैंने क्या बिगाड़ा था सो मेरे लिए इस प्रकार शिला रख कर मारा है मैं उससे जरूर बदला लूंगा। यह भावना उसके हृदय में थी। इसलिए

वह तीन पल की आयु समाप्त कर भवनवासी देव हुआ।

अनंतवीर्य से पुनः मुनिराज से पूछा अब मेरी क्या गति हुई है।

एक ब्रजदंड विद्याधर ने एक अपरिचित राजा को तलाब में शिला रख कर मृत्यु को प्राप्त कराया था। "कबहु आप भयो बलहीन सबलनि कर खायो अति दीन" जिस समय वह राजा बलवान एक भवनवासी देव हुआ तो उस विद्याधर से बदला लेने का विचार करने लगा। अजगर कहां गया यह पूछने पर मुनिराज ने बताया था। बदला लेने की भावना शेष रह जाने से भवनवासी देवों में जन्म लेना पड़ा है परिग्रह खोटे भाव कितना बुरा है। बड़ा पाप है। रानियों ने इसके त्याग से देव गति प्राप्त की । परंतु राजा को दो भव यों ही खाने पड़े। मोह बहुत बड़ा पाप है इसका प्रक्षालन जल्दी नहीं हो सकता। मुनिराज के वचनों का अनंतवीर्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। उससे संसार का हाल सुन राजा अपरिचित के पुत्र अनंतवीर्य को वैराग्य आ गया और अपने पुत्र स्वभाव कुमार को बुलाकर राज तिलक कर दिया। और स्वयं अपरिग्रही वन तपस्या करने चले गए और अनंतवीर्य ने सम्मेद शिखर से तप कर निवार्ण प्राप्त किया।

अनुपरिचर राजा के जीव विमल देव नामक भवनवासी देव ने जब ब्रजदंड़ विद्याधर को देखा तो क्रोधामिभूत होकर देखा समस्त विधाओं को छीन लिया। तथा विद्याधर और उसकी पत्नी को समुद्र में डाल दिया और उन्हें समुद्र में डालकर कहने लगा खूब पानी पियो और अपनी करनी का फल भोगो। तुमने मुझे ४ पटरानियों के साथ जल क्रीड़ा करते

समय शिलाखंड से ढककर मारा था। इसी का बदला मैंने चुकाया है। विद्याधर आर्तध्यान से मरकर प्रथम नरक में गया। इधर कुरुजांगल देश हस्तिनापुर नगर में जयदत्त नाम का राजा शासन करता था। उसकी रानी का नाम विजया देवी था। उनके कोई संतान नहीं थी। दोनों दंपति ने गुरुदत्त मुनिराज नमस्कार कर कहा– प्रभो हमारे किस पाप का उदय है। जिससे कुल बढ़ाने वाली संतति हमें प्राप्त नहीं हुई। क्या कभी हमें संतान होगी या बिना संतान के यों ही राज्य नष्ट हो जाएगा। गुरुदत्त मुनिराज ने कहा– वत्स धैर्य रखो। घबराने की आवश्यकता नहीं है। आपको जैन धर्म बढ़ाने वाला, निर्मल चरित्र का धारी धर्मात्मा पुत्र होगा। कुछ दिनों में अनुपरिचर राजा का जीव विमलदेव चयकर विजया देवी के गर्भ में आयेगा। समय पाकर रानी के एक सुंदर पुत्र हुआ। जिसका नाम गुरुदत्त रखा गया। क्योंकि यह पुत्र गुरुदत्त मुनिराज के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ था। अतः उन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ। यह शिशु प्रारंभ से ही होनहार विवेकी, समझदार और प्रतिभाशाली था। इसने थोड़े ही समय में सब शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था।

गुरुदत्त भी राज्य ग्रहण के योग्य हो गया पिता ने श्री सुधर्माचार्य से दीक्षा ले ली। शासन भार पुत्र को हाथों में सौंप दिया और दिगम्बर मुनि बनकर कठिन तपस्या करने लगे। गुरुदत्त भी पिता के द्वारा दिये गये राज्य शासन को बहुत ही सुंदर और व्यवस्थित ढंग से चलाने लगा। उसने राज्य की वृद्धि की और प्रजा की सुख सुविधा के लिए अनेक प्रयत्न किये। प्रजा नये राजा से बहुत प्रसन्न थी। क्योंकि दिन

दूनी रात चौगुनी उन्नति होती जा रही थी। मांडलिक महामांडलिक राजा उसे नमस्कार करने लगे थे।

एक दिन महाराज ने चंपापुर के राजा धात्रीवाहन की पुत्री अभयमती को मांगने के लिए दूत भेजा। पर धात्री वाहन राजा ने कन्या देने से इंकार कर दिया। जिससे गुरुदत्त ने चंपापुरी पर आक्रमण किया। चारों ओर से घेर लिया। जब अभयमती को यह समाचार ज्ञात हुआ कि कोई राजा इसका हरण करना चाहता है। तो उसे बहुत चिंता हुई क्योंकि उसने अपने मन में गुरुदत्त राजा से ही विवाह करने का निश्चय कर लिया था। जब अभयमती को यह पता चला कि गुरुदत्त महाराज स्वयं ही सेना लेकर आए हैं और वह स्वयं पिता के पास गई और अपना निश्चय उन्हें सुना दिया। उन्होंने कहा कि पिताजी मैं अपना विवाह गुरुदत्त के सिवाय अन्य किसी के साथ नहीं कर सकती हूं। इस भव में मेरे पति गुरुदेव महाराज ही हैं। इसलिए आप उन्हीं के साथ मेरा विवाह कीजिए। कन्या की इच्छा जानकर धात्री वाहन ने अपनी कन्या अभयमती का विवाह गुरुदत्त राजा के साथ ही कर दिया। गुरुदत्त विवाह के पश्चात अपनी नगरी में लौट आए। और पूर्ववत राज्य शासन करने लगे।

नरक से निकल कर ब्रजदंड विद्याधर जिसे कि समुद्र में डुबोकर मारा था। नीलगिरी पर वही नरक का नारकी व्याघ्र का जीव हुआ। और आस–पास के गांवों में आकर आक्रमण करने लगा। जिससे प्रजा में त्राहि–त्राहि मचने लगी। लोग भयभीत होकर गुरुदत्त के पास आए। वे कहने लगे हे राजन् नीलगिरि पर्वत पर जो सिंह रहता है उससे पीड़ित हैं। वह

बच्चों को मनुष्यों को आधी रात को आकर ले जाता है पशु बछड़ों की तो गिनती ही नहीं। न जाने कितने खा गया है। आप हमारे पालक रक्षक हैं प्रजापाल हैं हम अपनी व्यथा और किससे कहने को जाएं दया करो और हमें अपनी रक्षा का उपाय बताएं। गुरुदत्त राजा ने जैसा कि राजा का कर्त्तव्य क्या है पृथ्वी की रक्षा करना धूर्त लुटेरों चारों को देश से बाहर निकाल देना। सब प्रकार से प्रजा का संरक्षण करना। इसी प्रकार गुरुदत्त राजा ने अपनी प्रजा के लिए सब प्रकार से संरक्षण करना। तो राजा ने आज्ञा दी जिस गुफा मे व्याघ्र रहता था उस गुफा में आग लगा दो। लकड़ियां भरवाकर आग लगवा दी। जिससे आर्तरौद्र ध्यान के परिणामों से मरकर वह सौराष्ट्र देश में द्रौणमत नामक पर्वत के नीचे पहली खेट नामक गावं में आमरण नामक ब्राह्मण का हलमुख नाम का पुत्र था।

एक दिन हस्तिनापुर में अमिताश्रव नामक मुनिराज आए। राजा गुरुदत्त ने उन्हें नमोऽस्तु कर अपने पूर्व भवो को जानने की अभिलाषा प्रकट की। मुनिराज ने गुरुदत्त के भव प्रकट किए। बताया कि तुम राजा थे अजगर हुए और भवनवासी देव समाधि करके बने थे इस प्रकार भवों को बताया। गुरुदत्त मुनिराज के वचनों को सुनकर वैराग्य हुआ। और मुनिराज से अभयमती के पूर्व भव बतलाने की प्रार्थना की। मुनिराज ने बताया कि चंपापुर रानी नगर में एक किरात भील रहता था। उसकी स्त्री का नाम गोमुखी था एक दिन गोमुखी चर्तुविध संघ सहित आए समाधि गुण्त नाम के मुनिराज का धर्मोपदेश सुन रही थी। उपदेश श्रावण के बाद सभी लोगों

ने व्रत लेते देखकर गोमुखी ने भी अणुव्रत ग्रहण किए। इसका पति प्रतिदिन कबूतर पकड़ करके लाता था पर उसको यह छोड़ देती थी। जिससे वह नाराज होकर इसे प्रतिदिन पीटता था। एक दिन क्रोध में आकर गरुड़ वेग ने गोमुखी को घर से निकाल दिया वह घर से निकल कर अपने एक कुटुम्बी के यहां रहने लगी। मरते समय उसने धात्री वाहन राजा के ऐश्वर्य को प्राप्त करने की भावना की इस कारण यह धात्री वाहन राजा की पुत्री हुई है।

अभयमती रानी अपने पूर्व भव में किए व्रत के फल को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। और सोचने लगी कि व्रतों के सिवा अन्य कोई संसार में रक्षक नहीं है। धर्म ही इस जीव को लोक और परलोक के दुखों से मुक्ति दे सकता है। अब तक भोगों में आसक्त रहकर हमने अपने जीवन को कौड़ी के मोल बेच दिया। पर अब आत्मकल्याण करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। यह जीव व्यसनों में फंसकर अपना अहित करता है। सच्चे धर्म को घबड़ा कर छोड़ देता है। जिससे इसे आत्मिक तुष्टि नहीं होती। अब अवश्य ही हम लोगों को आत्मकल्याण में लग जाना चाहिए। इस प्रकार निश्चय कर राजा गुरुदत्त और अभयमती रानी संसार शरीर भोगों से विरक्त हो गए। गुरुदत्त की समस्त भोगोपभोग सामग्री अच्छी नहीं लगती।

महाराज गुरुदत्त ने अपने पुत्र श्री दत्त को बुलाया। और उन्हें सारी बातें समझाकर राज्य तिलक दे दिया। तथा अमिताश्रव नामक आचार्य के पास आकर दीक्षा ग्रहण की। थोड़े दिनों में द्वांदशांग श्रुतज्ञान का धारी होकर गुरु सेवा

करता रहा। और पश्चात गुरु आज्ञा से एकाकी बिहार करने लगा।

अभयमति ने इन्हीं आचार्य की शिष्या सुव्रता आर्यिका से व्रत ग्रहण किए। राजा और रानी तपस्या करने लगे। अभयमति की आयु थोड़ी थी। अतः उसने अपनी मृत्यु निकट जान समाधि मरण धारण कर लिया। मरते समय उसके परिणामों में अपूर्व शांति थी। जिससे वह कापिष्ठ स्वर्ग में ललिकांत नामक देव हुई।

गुरुदत्त आचार्य बिहार करते पल्लीखेठ नामक गांव के जंगल में आए। और संध्या हो जाने से प्रतिमा योग धारण किया। प्रातः काल हलमुख ने गुरुदत्त मुनि को देखा। वह अपने खेत में हल जोतने जा रहा था। और अपनी स्त्री को खेत में भोजन लाने के लिए घर पर कह कर आया था। पर वहां खेत में पानी भरा हुआ था। इसलिए हल चलाना बहुत ही कठिन है। अतः वह मुनिराज से कहने लगा। रे साधु जब मेरी स्त्री यहां भोजन करने को आवे तू उससे कह देना कि पश्चिम के खेत में हल जोतने गया है। वहीं पर भोजन दे आवें देरी नहीं करें। और देखो भूल मत जाना अन्यथा मुझे भूखा रहना पड़ेगा।

स्त्री जब दोपहर की रोटियां लेकर आई। और खेत में हलमुख को नहीं पाया तो बहुत नाराज हुई और गालियां देती हुई वापस लौट आई। इधर पश्चिम वाले खेत पर जब संध्या समय तक भोजन नहीं आया। तो हलमुख को बड़ा कष्ट हुआ। और क्रोध में पागल हुआ घर आया। और स्त्री को जोर से पीटने लगा रोते हुए स्त्री ने कहा– आप खेत पर कहां थे

मैं तो घंटो बैठकर आई हूं मेरी क्या गलती है।

वह हलमुख बोला– क्या साधु ने जो वहां बैठा था उसने यह बात नहीं कही कि मैं पश्चिम के खेत पर गया हूं। मैंने तो वहां बैठे साधु से कहा था मेरी पत्नी से कह देना कि पश्चिम की ओर के खेत पर जा रहा हूं। बड़ा मक्कार निकला वह साधु देखता हूं उसे और तीव्र क्रोध में आकर कहता है। मैं उसकी मरम्मत किए बिना नहीं छोडूंगा यदि तेल डालकर बुरी तरह जलाया नहीं तो काहे का ब्राह्मण और काहे की गृहस्वामी हूं। यह हलमुख नारकी पहले नरक में था वहां से मरकर सिंह हुआ और आज देखो सिंह नरकी की दोनों पर्यायों जीवों को मारना कुत्तों के समान नारकीयों से लड़ना यह करता था इसलिए संस्कार थे ही।

वह हलमुखी मुनिराज के पास गया। और उनको पकड़ लाया और उनके शरीर में मिट्टी के तेल से भीगा कपड़ा लपेट दिया और आग लगा दी। गुरुदत्त मुनिराज को तो पूर्व भव का स्मरण होने से वैराग्य आया था इसलिए वो आत्म श्रद्धा यह शरीर अलग है मैं चैतन्य पिंड हूं ज्ञानधन आत्मा हूं।

वैसे की गुरुदत्त मुनिराज मन को एकाग्र करके अपनी आत्मा को ध्यान में लीन होना श्रेष्ठ समझकर आत्मा में लीन हो गए। उन्होंने राज्य अवस्था में सिंह की गुफा में आग लगवाने की आज्ञा दी थी। आज वहीं सिंह का जीव ब्राह्मण हलमुख बना जो कि अपने पूर्व भव का वैरी को वैर के संस्कार से जैसे गुरुदत्त राजा ने जलाया वैसे ही मुनि बनने पर जला रहा है।

वे गुरुदत्त मुनिराज जलने लगे शरीर से मोह छोड़ दिया।

शरीर रूपी देवालय चैतन्य आत्मा रूपी देव विराजमान है उसे चैतन्य आत्मा में लीन हो गए और प्रत्येक आत्मा का यही भावना आनी चाहिए क्योंकि भावना भव नाशिनी होती है।

मुनिराज सोचने लगे क्रोध भी मेरा स्वरुप नहीं है। इससे भलाई नहीं हो सकती क्षमा ही हमारा स्वभाव है। आत्म हित शुक्ल ध्यान में लीन होने में हित है। इसलिए शुक्ल ध्यान में लीन होकर घातिया कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान रूपी आत्म संपत्ति को प्राप्त कियां। केवल ज्ञान होने पर ४ प्रकार के देव स्तुति आकर के करने लगे।

देव पुनः कहने लगे –हे प्रभो आपके चरण प्रसाद से कल्याण, वचन और निर्वाण मिलने में क्या देरी है। देवराज आपके चरण निरन्तर वन्दनीय हैं। कर्म बंधन को नाश करने के लिए आप दावाग्नि के समान हैं। इस प्रकार देवों ने स्तुति की।

हलमुख ने देवों को आया हुआ देखकर आश्चर्य में डूब गया। तथा बहुत भयभीत भी हुआ यह देवों के अतिशय से उचट कर बहुत दूर जाकर गिरा। यहां तो केवल ज्ञान के अतिशय दिख रहे थे भगवान आकाश में थे दिव्य तेज उनके शरीर से निकल रहा था। उनकी दिव्य ध्वनि बिखर रही थी। और हलमुख व गुरुदत्त केपली के दिनों के पूर्व के भवों का वर्णन निकल रहा था। उसको सुनकर हलमुख को तीव्र वैराग्य आया। और मुनिराज के ऊपर जो उपसर्ग किया था उसके लिए भी उसके मन में और भी बहुत कष्ट हुआ केवली भगवान के मुख से पंचम काल का स्वरूप भी पूछा और विचत्रता को

जानकर हलमुख का हृदय और भी कांपने लगा व वैराग्य को प्राप्त होकर उन्हीं गुरुदत्त केवली के निकट जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुदत्त केवली पृथ्वी पर बिहार करते हुए पल्ली खेट नगर में आए। और वहां द्रोणागिरि पर्वत से मुक्ति को प्राप्त हुए।

धन वैभव छोड़ा

भारत देश में मालव देश में अमरपुरी समान विश्वंधर राजा राज्य करता था। और राजश्रेष्ठी गुरुपाल उनकी सेठानी रति इन्द्राणी के रूप को भी तिरस्कृत करने वाली थी। रात दिन भगवद् भक्ति दान पूजा स्वाध्याय में लीन रहती थी। लक्ष्मी व सरस्वती का भंडार थी उसके एक बन्धुश्री कन्या थी।

धनश्री ने एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में ऐरावत हाथी, चंद्रमा, सूर्य देखा सुबह पति से पूछा तेरे पराक्रमी धर्मज्ञ गुरुभक्त पुत्र होगा। सूर्य देखने से जिन शासन में उन्नति करने वाला काम देव समान पुत्र होगा ऐंसा जिन मंदिर में जा मुनिराज से स्वप्नों का फल समझा। धनश्री के गर्भ में बालक आया दान, पूजा तीर्थाटन करने की भावना हुई। ६३ शलाका पुरुषों की कथा, तीर्थाटन, जिनालयों के दर्शन, भगवान के समक्ष बैठ कर स्तुति, सधर्म रक्षण की प्रवृत्ति श्रावकों के साथ धार्मिक चर्चा करना जिनेन्द्र भगवान का पंचामृत अभिषेक की भावना आदि धार्मिक भावनाओं को पूर्ण करती थी।

कैलाश पर्वत के ७२ जिनालयों का ध्यान, सुमेरु पर्वतों के जिनालयों का पूर्ण ध्यान करने लगी चर्तुविध संघ को खूब दान दिया।

एक दिन विश्वंधर राजा वैभव के साथ हाथी पर सवार हो वन क्रीड़ा को जा रहा था। इस अनिंध सुंदरी को देख काम पीड़ित हो गया। सोचने लगा रति, शची देवांगना के समान कौन है इस सुंदरी के बिना जीवन निरर्थक है। विश्वंधर राजमार्ग से वापस लौटा तो मूर्छित हो गया। चंदन अगर कपूर से अनेक शीतलोपचार किए चेतना लौटी तो कहने लगा कि जाओ गुणपाल की पुत्री बंधुश्री की याचना करो कि राजा बंधुश्री के साथ विवाह करना चाहता है। शुभ मुर्हूत में विवाह की तैयारी करो दासी ने वहां समाचार कहा कि यह सौभाग्यशाली आनंद छा जाना चाहिए। पटरानी बनेगी। पुत्रों से सेठ विचार करता है साधर्मी को पुत्री देना चाहिए। विधर्मी के साथ कन्या का विवाह नहीं करूंगा।

विवाह में कन्या की भावना जानना भी परम आवश्यक है अतः वह बंधुश्री को अपने पास बैठाकर प्रेमपूर्वक कहने लगा मालव नरेश तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं। और तुम्हें विवाह के बाद पटरानी पद दिया जाएगा। हमारे भाग्य जागेंगे। सभी देश हमारा सम्मान करेंगे। जब तुम्हें राज्य शासन मिलेगा तब और भी पुण्य होगा। हमारी गणना राजाओं में होने लगेगी बेटी हम धन्य हैं तुम जैसी बेटी को पाकर।

बंधुश्री ने उत्तर दिया–पिताजी आप संसार के वैभव में हमें भुलाना चाहते हैं। विधर्मी के साथ विवाह कर हमारा धर्म नष्ट करना चाहते हैं। मैं वासना लौलुपी नहीं हूं धर्म को दो कौड़ी में नहीं बेचना। जैन धर्म ही सभी प्राणियों का हित करने वाला है। यही त्रिभुवन में पूज्य व वंदनीय है। देवेन्द्रों के

द्वारा, त्यागियों को इसी से मोक्ष लक्ष्मी मिलती है। जैन धर्म तीव्र पुण्य उदय से मिला है। पापी जीव इसे नहीं पा सकते। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, शंका आदि सम्यकदर्शन के प्रति पक्षी हैं सम्यक दर्शन के प्रभाव से ही मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। मिथ्यात्व से जीव का हित नहीं हो सकता।

पुत्री मैंने तुम्हारे विचार समझने को पूछा है मैं खुद यह सब करने को समर्थ नहीं हूं मिथ्यादर्शन व हिंसा के समान अनिष्ट कारी और कुछ भी नहीं है। लड़की की रक्षा यहां से चले जाने पर ही की जा सकती है। इस प्रकार कह कर अपनी गर्भिणी स्त्री को अपने मित्र श्री दत्त के यहां छोड़कर १ अरब ८ करोड़ की संपत्ति को छोड़ वह पुत्री को लेकर चल दिया।

राजा को जब यह पता चला तो मुझे कन्या देना गुणपाल उचित न समझकर सारी संपत्ति छोड़ कर कन्या के साथ दूसरे देश चला गया है। उसने मुझे पापी अधर्मी समझा है। धर्म कल्याण करने वाला है। अहिंसा धर्म ही श्रेष्ठ है मैंने कुधर्म में व्यर्थ ही जीवन बिताया। मैंने धर्म की महिमा नहीं समझी थी यह कह कर राजा ने जिन धर्मानुयायी उस सेठ को ढूढ़ने अपने दूत को भेजा। एक दिन शिव गुप्त नामक आचार्य त्रिगुप्त नामक शिष्य के साथ ईर्यापथ से चलकर आ रहे थे। श्रीदत्त सेठ उन्हें पाप रूपी पर्वत को बज्र समान समझ पड़गाहन कर ले गए आहार के बाद सभी वहीं एकत्रित हो गए। धनश्री भी वहां आई। त्रिगुप्ति मुनि धनश्री को देख आश्चर्य में पड़ गए और गुप्त से कहने लगे प्रभो यह भद्र

परिणाम वाली, उत्तम गुण वाली, पति व्रत धर्म में प्रवीण, पर घर में निस्तेज क्यों रह रही है? गुरु बोले– आयुष्मान! संसार में दुखों के सिवा और कुछ है क्या? इस नगर के राजा ने इससे कन्या मांगी थी। गुणपाल सेठ कन्या ले कौशाम्बी गया बेचारी रह गई। मुनिराज बोले इसके यहां जो पुत्र होगा प्रभावशाली, यशस्वी राजा धर्मात्मा होगा। मुनिराज की भविष्यवाणी सुन श्रीदत्त को बड़ा कष्ट हुआ। सोचता है इसके पुत्र को मार डालना चाहिए। यह विचार पूर्व भव के दोनों के बैर के कारण आया। धनश्री को श्रीदत्त ने अंधेरी कोठरी में रखा थोड़ा सा भोजन देने लगा। उसका आना जाना भी रोक दिया। समय पाकर धनश्री को, पुत्र उत्पन्न हुआ सो बच्चे को चुरा कर चंडाल को दिया और मरा बालक धनश्री के पास सुला दिया। धनश्री को होश आया वो मृतक शिशु को देख रोने लगी। श्रीदत्त ने मायावी शब्दों में समझाना शुरू किया। कर्मोदय को कोई हाल नहीं सकता। मरा बालक दुर्भाग्य से हुआ है धैर्य धरो। चंडाल बालक के शुभ लक्षण–लाल रंग, प्रभावशाली ललाट, राजाओं जैसे चिह्न देख कर प्रभावित हुआ। उसकी भावना बदल गई। मैं क्यों मारू, गरम बालू पर छोड़ देता हूं अपने आप मर जायेगा। तप्त बालू पर पड़ा बालक मृत्यु की बाट जोह रहा था कि श्रीदत्त का बहनोई इन्द्रदत्त आ निकला। अनाथ सुंदर शिशु को देखकर प्रभावित हुआ और हाथों में ले लिया। कोई सन्तान थी नहीं इसलिए स्त्री का गूढ़ गर्भ बतलाकर उसका जन्म महोत्सव मनाकर उसका पालन करने लगा। नौकर चाकरों को भी कहा कि मिला है कहने की मना कर दी।

श्रीदत्त को बहनोई के घर पुत्र होने का समाचार मिला तो हर्ष से देखने गया उसी पुत्र को जिसे कि चंडाल को सौंपा था देखकर मानसिक वेदना हुई व मार डालने का उपाय सोचने लगा। अपने मन के भावों को छिपाकर बोला– मैं बहुत प्रसन्न हूं आपके यहां धन था बहुत पर संतान के बिना शोभा नहीं थी। राधा से बढ़कर कौन सौभाग्यशाली होगा। इस प्रकार बातें बनाकर राधा को अपने गांव ले आया। इसी प्रकार इन्द्रदत्त अपनी बहन को दुखी करके भी अपना दुष्टकार्य उस बालक को मारना चाहता था। कपट तो किया था धूमधाम से जन्मोत्सव मनाऊंगा। और एक दिन मरे बालक को राध ा के बगल में सुला कर उस बच्चे को जल्लादों को सौंप दिया। प्रातः मरा बालक देख राधा रोने लगी सो वह भी रोने लगा कहने लगा मैं तो इसे अपनी संपत्ति का मालिक बनाना चाहता था। मेरे बड़े अरमान बच्चे की मृत्यु से धूल में मिल गए। मैं कहीं का नहीं रहा। यहां नहीं लाता तो मृत्यु तो नहीं होती। इस प्रकार दूसरों को माथा ठोक–ठोक रोकर दिखाने लगा।

जल्लाद जब बच्चे को मारने सुनसान स्थान में पहुंचा। तो उसे बच्चे के तेजस्वी मुख को देखकर उसके मन में प्रसन्नता हुई। सोचने लगा कि निरपराध बच्चे की हत्या कर मैं पातकी क्यों बनूं। मैं इसे इस तालाब के किनारे छोड़ देता हूं। कोई हिंसक जानवर आएंगे सो खा जाएंगे। और यह अपने आप मर जाएगा। इस प्रकार निर्णय कर तालाब के किनारे रख दिया। दोपहर को गायें तालाब में पानी पीनी को आई। पानी पीना भूलकर वे उस बच्चे के पास चली गई और उसको

सूंघने लगीं। उस निरीह शिशु की मूक भावनाओं ने उन पशुओं के ह्रदय पर भी अपना प्रभाव अंकित कर दिया। और सब गायें एकत्रित हो गयी। स्वतः अपने स्तन से दूध गिराने लगीं। उन ग्वालों ने जो दृश्य देखा वे अत्यधिक प्रभावित हुए। और उस पुत्र को ले जाकर अपने स्वामी गोविंद को दे दिया। गोविंद ने उस सुंदर शिशु का नाम धनकीर्ति रख दिया धनकीर्ति कुमार कामदेव समान सुदर व तेजस्वी था। राज पुत्र के समान वृद्धिगत होने लगा।

श्रीदत्त सेठ अपनी पुत्री श्रीमती के विवाह के लिए भी लाने के लिए लुरपही नामक गावं में गया और उसकी निगाह धनकीर्ति पर पड़ी तो उसने तत्काल पहचान लिया सोचने लगा अभागा अभी भी जिंदा है। मैंने इसे मारने का प्रयत्न किया है फिर भी बच गया। जल्लाद यह धोखा देता है मैं स्वयं अपने हाथों से इसे जहन्नुम भेजूंगा। यहां कुछ दिन और रह सकूं वहां रहकर गावं वालों पर अपना प्रभाव डाल दिया। एक दिन गोविंद को बुलाकर कहा–भाई मैं आपसे काम लेना चाहता हूं। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। आप अपने पुत्र धनकीर्ति को हमारे घर भेज दीजिए। आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं अन्य आवश्यक कार्य से दूसरे गांव जा रहा हूं। कपट जाल गोविंद जानता नहीं था। उसने बड़े प्रेम से भोजन कराया और राह का खर्च देकर अपने गांव भेज दिया। साथ में सेठ पुत्र के लिए पत्र लिखा। मैं जिस व्यक्ति को घी लेकर भेज रहा हूं उसे तुम विष दे देना। दया दिखलाने की आवश्यकता नहीं है। धनकीर्ति घी का घड़ा लेकर व पत्र लेकर क्षिप्रा नदी जा रहा था आम के वृक्ष के नीचे छाया में

बैठ गया। सो गया। मृग सेना नाम की वेश्या वहां आई उसकी दृष्टि धनकीर्ति पर पड़ी तो मन में स्नेह की धारा उमड़ पड़ी वह अदृश्य शक्ति से खिच कर पेड़ के नीचे आ गई। धनकीर्ति के सुंदर मुख को देखकर लगा कि उसका पिता ही हो। कमर में बांधे पत्र को देखा तो पता चला उसका रहस्य समझकर दूसरा पत्र बांध दिया। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी। मैं दूसरे गांव आवश्यक कार्य से जा रहा हूं आज की लग्न सर्वश्रेष्ठ है इसलिए इसकी शादी कर देना। पत्र लिख ज्यों का त्यों बांधकर मृगसेना चली गई। उसने सोते हुए उसे जगाया नहीं। वह जागा तो बिलम्ब जानकर शीघ्र ही घी का घड़ा सिर पर रखकर उज्जैनी नगरी आया और श्री दत्त के पुत्र महाबल को उसके पिता का पत्र दे दिया।

महाबल ने जल्दी ही विवाह की तैयारी कर दी। ज्योतिषी को बुलाकर लग्न दिखायी। ज्योतिषी ने कहा– सर्वश्रेष्ठ समय है। धनकीर्ति राजा होगा, प्रतापी तेजस्वी निकलेगा। महाबल ने शीघ्र ही धनकीर्ति के साथ अपनी बहन का विवाह कर दिया। धनकीर्ति आनंद के साथ रहने लगा। उज्जयिनी में आकर श्रीदत्त ने देखा ओहो मैंने मार डालने को लिखा था परन्तु यह जीवित कैस बच गया? मालूम होता है इसका पुण्य जोरदार है। फिर सोचने लगा– कि मेरी लड़की विधवा हो जाए तो हो जाए परंतु इसको मारे बिना हमें चैन नहीं पड़ सकती मुझे द्वेष हो गया है। मैं स्वयं नहीं समझ पाता हूं। क्या करू इसे मारना अवश्य है। उसने धनकीर्ति को बुलाया बेटे मैं तुम्हें सुखी समृद्धिशाली देखना चाहता हूं आज अपने कुलदेवता धरणेन्द्र की पूजा को आधी रात के समय जाना

होगा। नैवेद्य चढ़ा कुलदेवता के दर्शन कर लौट आना। उसका पुत्र बोला पिताजी तो नयी–नयी बात करते हैं। महाबल ने स्वयं नैवेद्य ले लिया और धनकीर्ति के स्थान पर मंदिर में प्रवेश किया। त्यों ही जल्लादों की तलवारें उसकी गर्दन पर पड़ी पर वहीं गिर पंचत्व को प्राप्त हुआ। उसका पुत्र ही मारा गया। जब श्रीदत्त ने धनकीर्ति को घर में देखा तो पूछा कि तुम नैवेध चढ़ाने नहीं गए।

धनकीर्ति–पिताजी। मैं आपके आदेशानुसार जा रहा था। किंतु उदार प्रेमी महाबल ने नहीं जाने दिया। मेरे हाथ से नैवेध लेकर चले गए। मैंने आपकी आज्ञा पालन करने का पूरा प्रयत्न किया परंतु मुझे यहीं रूक जाना पड़ा।

धनकीर्ति के वचन सुनते ही उसकी बड़ी वेदना हुई नंगे पैर मंदिर की ओर दौड़ा। मंदिर के द्वार पर महाबल की लाश के आगे विलाप करने लगा और शोक में विक्षिप्त सा हो गया। सोचने लगा मैंने इस दुष्ट के मारने का कितना प्रयास किया सब व्यर्थ गया। इसके स्थान पर मेरा ही पुत्र मारा गया। किंतु कुछ भी हो इसे मारे बिना मुझे चैन नहीं मिल सकती। और पत्नी को बुलाकर बोला कि इसको मारे बिना मुझे चैन नहीं मिल सकती विष प्रयोग के द्वारा इसे मार दो। पहले पतिव्रता उसकी पत्नी विसाखादात्ता ने उसे बहुत समझाया पर बाद में स्त्री का पति की आज्ञा माननी है। आप शांति चाहते हैं तो पाप करना छोड़ दीजिये। आप ज्ञानवान हैं अहिंसा तत्व समझये। मुझे उपदेश की आवश्यकता नहीं यदि जीवन चाहती हो तो इस दुष्ट को मार डालो। स्वामिन आपकी आज्ञा शिरोधार्य है एक बार दासी के वचनों पर ध्यान दे संसार

में द्वेष ईर्ष्या का तांडव नृत्य शुरू से होता आ रहा है। अहिंसा के समान सुख देने वाला कोई नहीं है। जिससे कि बैर–विरोध का अंत किया जाता है। आप विचार करें मैं तो आपके चरणों की दासी हूं। श्रीदत्त बोला मैं आपसे कुछ सुनना नहीं चाहता। तत्क्षण ऐसा उपाय करो जिससे वह मारा जाए। इसके जीवित रहते एक क्षण भी मेरे को शांति नहीं मिल सकती। हताश होकर पत्नी ने विषैले लड्डू तैयार किये बडे–बड़े लड्डूओं में विष मिला हुआ था। पुत्री को आदेश दिया कि लड्डू परोस दो। पुत्री सोचती है बड़े लड्डू पति को परोसती हूं तो क्या सोचेंगे पिताजी लड़की हमें भूल गई इससे बड़े लड्डू पिता को परोस दिए। लड्डू खाते ही श्रीदत्त मूर्छित को गए और लड़खड़ा कर मर गए। दूसरे को मारने का जो अनिष्ट सोचता है उसका स्वयं ही अनष्टि हो जाता है।

धनकीर्ति कुमार ने जब यह देखा आश्चर्य में पड़ गया और श्रीमती भी पिता की अवस्था देख कर रोने लगी। उसके करुण क्रन्दन को देख विसाखादाता भी वहां आई उसके मरने पर श्रीमती रो रही है। दामाद के स्थान पर पति का मरण देखकर उसे महान आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी– हाय रे भाग्य की लीला कौन जान सकता है? जीवन भर कपट वृत्ति की उसका फल जीवन भर उसे ही भोगना पड़ा। धनकीर्ति का बाल बांका नहीं हुआ। अहिंसा रूपी जैन धर्म के फल से भयंकर संकट टल जाता है किंतु हिंसा के कारण सुख भी दुख वन जाता है।

मुनि के वचन असत्य नहीं होंगे यह धनकीर्ति निश्चय

ही पालक नरेश बनेगा। पृथ्वी में वंदनीय मांडलिक राजा होगा वह दामाद के मुंह की ओर देख कर अपने पति के क्रूर कार्यों की आलोचना पुत्री से कहने लगी। बेटी राजाओं से पूज्य धनकीर्ति को पाकर तुम धन्य हो तुम पटरानी बनोगी। मेरे पति को धनकीर्ति का पुण्य एवं वैभव सहन नहीं हुआ इससे कपट जाल रचकर इन्हें अनेक बार मरवाने का प्रयास किया पर असफल रहे। धन्य है जो पुण्यात्मा हैं उनका कोई बाल बांका नहीं कर सकता। जैसे सूर्य के प्रकाश को कोई क्षीण नहीं कर सकता वैसे ही पुण्यात्मा के पुण्य को कोई क्षीण नहीं कर सकता।

गुणपाल सेठ ने अपनी पत्नी धनश्री को मित्र पर विश्वास कर छोड़ दिया था। किंतु ईर्ष्या वश उनके पुत्र धनकीर्ति को उत्पन्न होने के दूसरे क्षण से ही मारने का प्रयास किया था। जिसका परिणाम आपनी और अपने पुत्र की मृत्यु हुई। वह आवेश में सारी कथा कहकर स्वंय विष का लड्डू खा गई। और पुत्री को आशीर्वाद दिया कि पतिव्रता में सीता के समान, पवित्रता में शची समान, गुरुभक्ति में चेलना समान, विद्या में सरस्वती के समान और रूप में रति के समान पटरानी बनेगी। पुनः जोर से कहने लगी श्रीदत्त विसाखादत्ता का अंतिम संस्कार कर उनके ही व्यक्ति धनकीर्ति की स्तुति करने लगे। हे देव आपके समान पुण्यात्मा कौन है? आपके समान यशस्वी दिव्य तेजस्वी और आलौकिक चमत्कारी कौन है?

धनकीर्ति ससुर के सारे धन का स्वामी बन गया। मालब नरेश विवंधर को उसकी सूचना मिली की यह सेठ गुणपाल

का पुत्र है। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और राजा ने चारो और दूत भेज कर सम्यक्त्व चूड़ामणि गुणपाल का भी पता लगा लिया। गुणपाल कौशांबी में था तो ससम्मान उसे बुला लिया। उसे राजसेठ का पद प्रदान किया। तथा उसकी सारी संपत्ति वापस कर दी। राजा उससे कहने लगा। श्रेष्ठि तुम धन्य हो। आपने अपनी धर्म रक्षा के लिए धन वैभव, भोग–विलास का त्याग कर दिया। आपके त्याग का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। मैंने उसी दिन से जैन धर्म धारण किया था। श्रावक की क्रियाएं पालन करने लग गया हूं। कृपया अब जैन धर्म के तत्वों को हमे समझाइये। मैंने यह भी निश्चय किया है मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र के साथ करूंगा और कन्या दान से आधा राज्य भी दूंगा आप स्वीकार करें। गुणपाल बोला मैं यह सब तभी स्वीकार करूंगा। तब आप वस्तुतः जैन दीक्षा लेवेंगे। गृहस्थाचार्य को बुलाकर दीक्षान्वय क्रिया करवायेगें तब आप जैन माने जाएंगे। राजा बोला– श्रेष्ठीवर्ग मैं जैन धर्म का पालन करता हूं आपकी इच्छा है तो मैं दीक्षान्वय क्रिया धारण करूं इसका शीघ्र प्रबंध कर दें। राजा की दीक्षान्व्य क्रिया के बाद शुभ मुर्हूत में धनकीर्ति का विवाह हो गया। कुछ समय राज्य करते–करते संसार शरीर भोगों की असारता को विचार करते हुए आत्मकल्याण करने वाली दिगम्बरी दीक्षा यशोधर मुनिराज से ग्रहण कर ली। श्रीमती आदि ने आर्यिकाओं के पास आर्यिका दीक्षा ले ली। सभी लोग संन्यास मरण कर स्वर्ग में देव हुए।

आहार दान का फल

जो पहले श्रीषेण राजा थे वे शांतिनाथ हुए। जम्बूद्वीप के दक्षिण में भरत क्षेत्र के मलय देश के रत्नसंचय नगर में श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। धीर–वीर और दान का देने वाला था। शत्रुओं का नाश करने में दीर्घ दक्ष प्रजा का पालन करने वाला था। दो रानियां सिघनंदिता, आनंदिता रानी के दो पुत्र हुए। सब अच्छी तरह से राज्य चल रहा था। उसी नगर में सात्यकि नाम का ब्राह्मण महाबुद्धिमान था। अचल ग्राम में भी एक ब्राह्मण रहता था। धरणी जट नाम, वेद–वेदाओं का ज्ञाता था। अग्निला पत्नी से इन्द्रभूति, अग्निभूति नाम के पुत्र थे। एक कपिल लड़का नाम का दासी का पुत्र था जो पूर्व पुण्य से तीक्ष्ण बुद्धि वाला था। जब इन दोनों पुत्रों को ब्राह्मण पढ़ता था तब यह दासी पुत्र कपिल भी पढ़ता था। बुद्धि कर्मानुसारिणी होती है। बिना पढ़ाये ही वह दासी पुत्र सुनकर ज्ञानवान हो गया।

सभी ब्राह्मण धरणीजट से क्रोधित हो गए। दासी के पुत्र को विद्या क्यों पढ़ाई। और कपिल को घर से निकाल दिया। रत्नपुर नगर के ब्राह्मण का वेष धरकर रहने लगा। सात्यकि पुरोहित ने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह इसके साथ कर दिया। राज्य में अधिक सम्मान पाने लगा। बहुत सारे वेदों का पाठ करने लगा।

जब सत्यभामा राजस्वला हुई तब वह कपिल कुचारित्र करने की कुचेष्टा करने लगा। सत्यभामा ने यह देखकर मन में विचार किया। यह पापी किसी नीच का लड़का है उत्तम

पुरुष ऐसी चेष्टा नहीं करते। यह कपिल से विरक्त हो गई प्रेम छोड़ दिया और अपने महल में रहने लगी। धरणी जट ब्राह्मण पाप कर्मोदय से दरिद्री हो गया। कपिल का अधिक वैभव संपदा है सुनकर वहां आया। देखो ब्राह्मण की लड़की को कैसा पति मिला और इसे गरीबी आ गई।

कपिल ब्राह्मण अंदर बहुत रोष कर रहा था। बाहर अत्यंत अनुराग रख रहा था। और उसके चरणों में पड़ा। ऊंचे पर बैठकर बहुत सेवा की थी। और कहने लगा मेरी मां भाई वगैरह सब सुख से हैं। ऐसा पूछकर गरम जल से स्नान कराके वस्त्राभूषण पहनाकर यह ब्राह्मण मेरा पिता है किंचित ऐसी कपटपूर्ण बात कही। वह ब्राह्मण दरिद्री था इसलिए वह भी इसको अपना लड़का बताने लगा। कपट वचन धरणी जट को सारे नगर में प्रसिद्ध करना पड़ा। इस दरिद्रता के कारण कार्य अकार्य कुछ भी मनुष्य नहीं गिनता सभी करता है। एक माह व्यतीत हुआ धरणी जट को उस नगरी में सत्यभामा जो गुणों की खान थी। एक दिन उससे बोली–मैं बहुत सारा धन दूंगी लेकिन यह बतलओ धरणी जट पिताजी कपिल क्या तुम्हारा पुत्र है। इसकी चेष्टाएं अत्यंत खोटी, गंदी, खराब हैं। मेरे हृदय में इसके प्रति प्रेम नहीं है। तब यह बात जान धरणी जट ब्राह्मण ने सारी बात बता दी और बहुत सारा धन सत्यभामा से पाकर अपने घर की ओर गया। सत्यभामा अपने पति को नीच कुली दासी पुत्र जानकर राजा की शरण में गई। राजा ने अपनी पुत्री के समान इसको रनवास में रखा। और कपिल को दुष्ट वृद्धि कपटी चरित्र हीन सज्जनता रहित समझ काला मुख करवा कर गधे पर बैठाकर देश से निकाल

दिया। राजाओं का यह धर्म है सज्जनों का पालन करें, दुष्टों को दंड देवें। नहीं तो देश में चरित्रहीन बहुत होने लगेंगे।

एक दिन राजा के यहां तप रत्न की खान दो चारण ऋद्धि मुनि मानो दो चंद्रमा ही आये हो, आये। आदित्य गति और अरिंजय इनको देखकर राजा ने प्रणाम किया। राजा ने भक्ति पूर्वक पड़गान करके आहार दिया।

इस प्रकार श्रीषेण राजा ने दान दिया अपने पुत्रों के साथ बहुत दिन सुख भोगने के बाद अपना शरीर छोड़ कर उत्तम भोग भूमि में सत्यभामा के साथ जन्म लिया। दंस प्रकार के सुख भोगे। जहां शीत उष्ण की बाधा नहीं दरिद्रता नहीं अल्पायु नहीं, आपस में प्रेम, युद्ध नहीं, दान के प्रभाव से ही वहां जीव जन्म लेते हैं। वहां से आकर देव गति में ही जन्म लेते हैं। पांच जीवों ने भोग भूमि के अच्छे सुख भोग और फिर हस्तिनापुर में भव भव में ऊंचे पदों को पाकर सुख भोगते हुए विश्वसेन ऐरादेवी के यहां शांति नाथ तीर्थंकर के रूप में अवतार लिया और मोक्ष गए।

वृषभसेना

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में कावेरी पत्तन नामक समुद्र का किनारा था। जहां उग्रसेन नाम का राजा राज्य करता था। प्रजापित बुद्धिमान विवेक सहित अनेक गुणों से युक्त धर्मात्मा था। उसी नगर में जिनचंद्र सेठ और धनश्री नाम की उसकी सेठानी थी। जो अत्यंत सुंदर अनेक गुणों की खान पति को अत्यंत प्यारी थी। उसी के एक लड़की (सुता) ने जन्म लिया।

वह अत्यंत सुंदरी गुणवान माता–पिता ने वृषभसेना उसका नाम रखा। धाय भी उसका अत्यंत सुंदरी प्रीति से पालन करती थी। बड़े प्रयत्न से उसका न्हवन कराती थी। उस वृषभ सेना के नहाने के जल से एक गड्ढा भर गया था। एक दिन कोढ़ आदि रोगों से युक्त कुत्ता उसमें गिर पड़ा। गिरते ही वह कुत्ता अत्यंत सुंदर स्वस्थ्य तन हो गया जिससे धाय को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस धाय ने मन में चिंतवन किया धन्य हो यह सुकुमारी बड़ी पुण्यात्मा है। इसके शरीर के नहाने का जो जल फैलता है वह रोगों को नाश करने वाला है। और अमृत के समान है। उस न्हवन से नहा कर उस धाय की माता १२ वर्ष से अंधी थी। उस जल को लगाने से उसकी आंख खुल गई। वह धाय अपनी माता का रूप देख अत्यंत हर्षित हुई. इसके शरीर से स्पर्शित जल तो औषधि के समान है। इस धर्म की ख्याति मैं सारे जगत में विख्यात करूंगी। इसके प्रभाव से सारे जगत के रोग नष्ट होते थे।

एक दिन राजा नरपिंगल ने मंत्री को घनपिंगल राजा के देश में भेजा यह तुरंत ही जा पहुंचा। जब यह पहुंचा तो सब कुओं में उसने विष डलवा दिया। तब इस राजा की सारी सेना विष युक्त पानी पीते ही बीमार हो गये। तव धाय ने वृषभसेना के न्हवन के जल को लगा कर सभी निरोगी हो गए। जिस प्रकार कि गुरु बचनों के प्रसाद से मिथ्यातम तुरंत ही नष्ट हो जाता है। उग्रसेन राजा ने क्रोधित उसके ऊपर चढ़ाई की। उन कुओं का पानी पीते ही सारी सेना फिर घनपिंगल ज्वर से पीड़ित हो गई। तब राजा फिर उदास होकर लौट कर अपने स्थान पर आ गया।

रत्नपिंगल मंत्री ने राजा के सेठ की पुत्री का सारा हाल राजा से कहा। तब हर्षित होकर राजा ने अपनी पीड़ा के नाश के लिए उसके न्हवन का जल मांगा। सेठानी सेठ से डर कर बोली क्या पुत्री के न्हवन जल को राजा अपने सिर पर डालोगें। जब मंत्री ने कहा मैं सत्य कह रहा हूं। जो सत्य बोलने वाले को दोष नहीं लगता। तब दोनों दंपति ने न्हवन का जल धाय के हाथों राजा के पास भेजा। राजा ने उस न्होन का जल अपने सिर पर लगाया। उसके स्पर्श से राजा रोगों से रहित अत्यंत सुन्दर हो गया। तब धाय से राजा ने कन्या के बारे पूछा। जिनचंद सेठ को तुरंत बुलवाया। राजा के पास तुरंत सेठ आया। कहा अपनी कन्या वृषभसेना हमारे लिए देओ। सेठ ने कहा राजन मैं अपनी पुत्री तभी दे सकता हूं जब कि अष्टान्हिका महापूजा पंचामृत अभिषेक करके करो और सारे कैदियों को कारागृह से मुक्त करो। तब विमल तेजस्वी सुंदर रूपवान और गुणवान अपनी पुत्री आपको दूंगा। राजा ने यह सब वचन माने सेठ ने खुशी के साथ राजा के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। सेठ की पुत्री वृषभसेना अत्यंत गुणवान पुण्यवान है। राजा ने उसे पटरानी का पद दे दिया। इससे ही विशेष अनुराग राजा का था। जिनेन्द्र अभिषेक निर्ग्रंथ गुरुओं को अहार दान भी बड़ी भक्ति से करने लगा। शील व्रत का पालन भी करने लगा। जगत पूज्य जैनधर्म को पालते हुए जो बनारस का पृथ्वीचंद राजा महादुष्ट था इसलिए बंदी गृह से उसे नहीं छोड़ा गया था। नारायणदत्ता उसकी रानी थी। तब नारायण दत्ता ने यह मंत्रणा की कि वृषभसेना के नाम से बहुत दान दिया जाए

और अनेक जनों का सम्मान करती थी। दान लेने के लिए इस पत्तन में बहुत मनुष्य आते थे। तब राजा बोले मेरे बिना पूछे तुमने ये दानशाला कैसे खोली है। इतना दान कर रही हो। तब वृषभसेना बोली मैं दान नहीं करती हूं। मेरे नाम से कोई और दान कर रहा है। तब राजा का रोष वृषभसेना के वचन सुनकर शांत हुआ। पृथ्वीचंद को दुष्टता के नहीं छोड़ा था। उसने पत्र लिखा सिर झुका कर अपनी उदण्डता मैंने त्याग दी ऐसा परिचय दिया और जब पृथ्वीचंद्र कारागार से छूटे तो वृषभसेना से कहा हे देवी तुम्हारे प्रताप से मैंने दूसरा जीवन पाया है। मेरा जीवन सफल हुआ है। राजा से भी बहुत सम्मान पाकर घन पिंगल के पास गया। घन पिंगल ने पृथ्वीचंद्र छोड़ दिया है। मेघ पिंघल भी आया और उग्रसेन राजा का मित्र बन गया। देखो जग में पुण्य प्रधान है।

णमोकार मंत्र का महाप्रभाव

मगध देश के राजगृह नगर के राजा संग्राम शूर राज्य करते थे उसकी रानी कनक माला थी। नगर में वृषभ दास सेठ थे जिनदत्ता उसकी पत्नी अनेक रूप गुणों शील की खान थी विनय तो जैसें जलेबी में रस भरा रहता है वैसे ही कूट–कूट कर भरी हुई थी। वह सेठ महान सम्यक दृष्टि धार्मिक संपूर्ण अच्छे लक्षणों से युक्त था। पांच गुण उसमें थे। योग्य पात्र में राग करने वाला, गुणों में राग करने वाला, परिजनों के साथ रहने वाला, शास्त्र में ज्ञाता, युद्ध में योद्धा ये ५ गुण उसमें थे। जिनदत्ता सम्पूर्ण गुणों से युक्त परंतु वंध्या एक यह अवगुण उनमें था अर्थात कोई पुत्र उसके नहीं हुआ

था। स्त्री के आज्ञाकारिणी होना, संतुष्ट होना, दक्ष होना, साध्वी होना, पतिव्रता और विदुषी होना ये अच्छे गुण लक्षण माने गए हैं।

एक दिन जिनदत्ता ने अपने पति सेठ से हाथ जोड़कर कहा– स्वामिन पुत्र के बिना कुल सुशोभित नहीं होता। अनेक उपाय कर लिए पुत्र उत्पति होती नहीं है। पुत्र के बिना वंशच्छेद हो जाएगा। इसलिए संतान की प्राप्ति के लिए दूसरा विवाह कर लीजिए। यौवन, सौंदर्य, प्रेम आभूषणों का समूह पुत्र के बिना बेकार हैं। सेठ ने कहा– हे भद्र तुम्हारा कहना सत्य है। फिर भी असत्य है क्योंकि "पर मिंद शरीरपि" यह शरीर भी पर है। सर्वमनित्यं दृष्टवा या भोगानुभवनं करोतु स विवेक शून्यएव। और संसार की समस्त वस्तुओं का अनित्य देखकर जो भोगों का अनुभव करता है। वह विवेक से शून्य है! सेठ जी कहते हैं कि मेरे ७० वर्ष पूर्ण हो गए हैं अतः विवाह करना उचित नही है वृद्धावस्था में धर्म को छोड़कर यदि ऐसा किया जाए तो लोक में मोह की महिमा, हंसी एवं विरुद्धता होगी। रोग होने पर भी शरीर को आभूषणों से सजाना, शोक रहते हुए भी भोगों में निमग्न रहना, दरिद्रता होने पर भी घर में रहना, वृद्धावस्था आने पर भी स्त्री का समागम करना। यह सब परस्पर विरुद्ध बातें हैं। इन्हें जानता हुआ भी मनुष्य जिससे प्रेरित हो इन्हें नहीं करता है। वह महान मोह रूपी समस्त लोक को जीतता है। मेरे शरीर को यमराज ने ग्रस लेने की तैयारी की है।

तब जिनदाता बोली– हे स्वामिन भागों के वशीभूत ऐसा किया जाता है। तो वह हंसी का कारण होता है। संतान वृद्धि

के लिए करना दोष नहीं है। इस प्रकार सेठानी के कहने पर सेठ ने विवाह करना स्वीकार कर लिया।

उसी नगर में जिनदत्ता ने अपने काका की पत्नी बंधुश्री को पुत्री कनकश्री की याचना की परंतु काका कहते सौत के ऊपर पुत्री नहीं दी जाती है। जितदत्ता ने कहा मैं कनकश्री के घर नहीं जाऊंगी। जिन मंदिर में ही रहूंगी। ऐसी शपथ खा कनकश्री को मांगा। ऐसी शपथ के साथ अपने चचेरी बहन कनकश्री का विवाह शुभ मुहूर्त में अपने पति वृषभदास सेठ का विवाह करा दिया। जिनदात्ता सेठानी विवाह के पश्चात अपने सारे घर का काम काज अपनी सौत कनकश्री को सौंप कर रात दिन धर्म ध्यान में तत्पर रहने लगी। घर की चिंता कुछ भी नहीं करती थी। जिनदत्ता जिन मंदिरों में और दोनों दंपत्ति सुख से अपने महलों में रहने लगे।

एक दिन कनकश्री अपनी मां के घर गई। माता ने पूछा हे पुत्री कनक तू अपने पति के साथ सुख का अनुभव करती हो या नहीं। पुत्री ने उत्तर दिया मां मेरा पति के साथ वार्तालाप भी नहीं है। काम भोग की बात ही अलग है। और दूसरी बात है सपत्नी के रहते मेरा विवाह कर दिया अब पति के सुख के बारे में पूछती हो या जो रेत से घी निकालने जैसी बात हो गई। सिर पर मुंडन कराके पूछती हो यह ठीक नहीं है। मुझे तिल मात्र भी सुख नहीं है। जिनदत्ता ने मेरे पति को हर एक प्रकार से वश में कर रखा है दोनों दंपति दिन रात मंदिर में रहते हैं। वहीं सुख का अनुभव करते हैं और संध्या सुबह दोनो समय भोजन करने के लिए आते हैं। मैं अकेली दुर्बल शरीर होकर रात्रि में भाग्य की निंदा करती

रहती हूं। यह सब झूठा समाचार कनकश्री ने अपनी माता बंधुश्री से कहा।

पुत्री के मिथ्या वचन कहने पर भी पुत्री के काम सुख की पूर्ति के लिए वह क्रोधाग्नि से बुझाना चाहती है। और उसका प्रयोग करने लगी। वह कहती है किं हे पुत्री यह पापिनी जिनदत्ता जिन उपायों से मरेगी वह उपाय मैं करती हूं। इस प्रकार पुत्री के मन में संतोष उत्पन्न कराके उसे पति के घर भेज कनकश्री ने अपनी माता बंधुश्री से इस प्रकार कपटपूर्ण वार्तालाप अपने पति सेठानी जिनदत्ता के बारे में किया। बंधुश्री को जिनदाता के प्रति ईर्ष्या भाव उत्पन हो गया। कहा है कि यह जीव पर्याय परिवार व प्रकृति के मोह में फंसकर पाप कर्मों को उर्पाजन करके नरकों में जाते हैं। बंधुश्री अपनी पुत्री कनकश्री के मिथ्या वचनों पर विश्वास करके क्या–क्या माया जाल रचती है। वह जिनदत्ता से मन में वैर बांधकर रह गयी।

एक समय जो कि अनेक धूर्त जालों से सहित था। जिसका शरीर हड्डियों के आभूषणों से विभूषित था। जो त्रिशूल डमरु और नूपुर से युक्त था। जिसकी आकृति अत्यंत भयानक डरावनी थी। ऐसा एक कापालिक नाम का योगी भिक्षा के लिए बंधुश्री के घर आया।

बंधुश्री मन में उसे देख ऐसा मन में विचार करती है। अहो मैंने कई कापालिक देखे। लेकिन ऐसा तेज भयानक रौद्र रूप वाला जो बुरे से बुरे कार्यों को सिद्ध करने वाला हो ऐसा सिद्धि वाला कापालिक आज ही देखा है। इसके पास अवश्य ही मेरे कार्य की सिद्धि हो जाएगी। ऐसा निश्चय कर

उसने अपना कार्य कराने के लिए उसे अनेक जलेबी व्यंजनों को अच्छी भिक्षा दी। खोटे कार्यों को करने वालों को खोटे व्यक्ति ही आदर करते हैं। कहा है यावत्कीर्ति भवेत्लोके यावद् दानं प्रयच्छति– लोक में जब तक कीर्ति होती है तब तक दान दिया जाता है। इसके बाद कापालिक ने बंधुश्री ने कहा– ये योगी तुम नित्य प्रति मेरे घर आया करो। कापालिक ने बंधुश्री का कहना मान कर बंधुश्री के घर आना स्वीकार कर लिया। संसार में कार्य वश ही कोई किसी की सेवा करता है। "परमार्थ से कोई किसी का प्यारा नहीं है।" प्रतिदिन बंधुश्री योगी को भिक्षा देने लगी। एक दिन भिक्षुक ने अच्छी भक्ति देखकर योगी ने मन में विचार किया माता मैं तुम्हारा उपकार करूंगा। पिता, यज्ञोपवीत देने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला और भय से रक्षा करने वाला पांच पिता हैं।

राजपत्नी, गुरुपत्नी, मित्र पत्नी, पत्नी की माता, अपनी माता ये पांच माताएं हैं। बंधुश्री ने अन्न देकर इसे वश में कर लिया– वह कापालिक बोला मां मुझे एक महाविद्या की सिद्धि है। जो तुम्हारा प्रयोजन हो कहो मैं वेसा करूंगा। पश्चात रोती हुई बंधुश्री ने गदगद् कंठ से अपनी पुत्री का सारा हाल कह दिया। मेरी पुत्री कनकश्री जिनदत्ता सेठानी के कारण दुखी है इसलिए यह पापिनी जिनदत्ता तेरे द्वारा मारने योग्य है। तुम्हारी बहिन कनकश्री जिस प्रकार अच्छी तरह घर में रहने लगे वह काम तुम्हें अवश्य ही करना है। तब योगी ने कहा– हे माता तुम सुनो मुझे जीवों के मारने में किंचित भी नहीं सोचना पड़ता। आज में कृष्ण पक्ष की चर्तुदशी के दिन श्मशान में विद्या सिद्ध करके निश्चित ही

जिनदत्ता को मार डालूंगा। और अपनी बहिन कनकश्री को सुखी करूंगा। यदि यह प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका तो अग्नि में प्रवेश करूंगा। योगी के ऐसा कहने पर बंधुश्री अपने मन में अत्यंत हर्षित हुई।

कापालिक भी ऐसी प्रतिज्ञा कर चर्तुदशी के दिन पूजा की सामग्री लेकर साथ गया। वहां अपने स्थान पहुंचकर एक मुर्दा ले आया और पूजा कर उसके शव में एक तलवार बांध कर बैठ गया। बैठकर उसने मुर्दे की बड़ी पूजा की एंव मंत्र का जाप किया। पश्चात् वेताली महाविद्या की आराधना कर उसका आह्वान किया। मंत्र प्रभाव से वेताली विद्या शीघ्र ही उस मुर्दे में प्रवेश हो गई। अनेक मुख वाली भयंकर बेताल प्रगट हो– कहने लगा हे महामाये–– मैंने जिस कार्य वश तेरी आराधना की है सुनो जिन मंदिर में स्थित जो कनकश्री की सौत है ऐसी जिनदत्ता को मार डालो कापालिक के वचन सुन विधा ने कहा– तथास्तु। जैसा आपने आदेश दिया है वैसा ही करूंगी। तदन्तर किल किल शब्द करती हुई वह भयानक राक्षसी के समान विद्या जिनदत्ता के पास गई। ज्यों ही विद्या जिनदत्ता को देखती है वह प्रोषध का व्रत लिए हुए थी और सम्यकदर्शन जिसकी आत्मा में निवास करता था। जिसका चित्त सम्यकदर्शन से युक्त थी। वह वेताली यद्यपि अत्यंत शक्तिशालिनी थी परंतु धर्म के माध्यम से कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकती। जिसके हृदय में सम्यक्त्व रूपी देव निवास करता है। उसके मना से सिंह श्रृंगाल, अग्नि पानी भयंकर सर्प, विष, समुद्र, स्थल गर्त, मणिधारी सर्प, चोर, दास, ग्रह, शाकिनी, रोग, शत्रु तुल्य आपत्तियां विलीन हो जाती हैं।

वह विद्या तीन प्रदक्षिणा देकर शमशान में चली गई। उस भयंकर विद्या को देखकर योगी भाग गया। मृतक शरीर में उस योगी ने फिर आह्वन किया। परंतु पहले के समान वह कुछ करने में जिनदत्ता का समर्थ नहीं हुई। इस प्रकार तीन बार योगी ने ऐसा किया चौथी बार मरण के भय से योगी ने कह दिया कि हे महा भैरवी। कनकश्री और जिनदत्ता के बीच में जो दुष्टा हो उसे मार डालो।

विघ्नौघा प्रलंय यांति शाकिनी भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्त्यमाने जिनेश्वरे।।

जो जिनेन्द्र देव की स्तुति करता है उसमें ही लीन रहता है उसे विष, भूत, वेताल शाकिनी आदि कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते। उस पर प्रहार न हीं कर पाते पापियों को देव मार डालते हैं। यही णमोकार की महिमा है। तदन्नंतर वह वेताली भयंकर शब्द करती हुई आई। और शरीर की चिंता को आई हुई कनकश्री को देखा। एंव तत्काल ही कापालिक की आज्ञा याद कर शुद्ध समयकत्व, तप, शाली आदि गुणों से युक्त देव और गुरु की भक्ति में संलग्न जिनदत्ता का पराभव अपने आपको करने में असमर्थ जानकर उस विद्या ने प्रमाद कनकश्री को तलवार से मार डाला। खून लिप्त शरीर को धारण करने वाली वह देवी विद्या श्मशान में जाकर खड़ी हो गई। योगी ने उसका विर्सजन किया वह अपने स्थान पर चली गई। कापालिक भी अपने स्थान पर चला गया। ठीक है होनहार का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।

प्रातः काल संतुष्ट चित्त बंधुश्री अपने बेटी के यहां गई।

और शैय्या पर खंडित अपनी पुत्री को देखकर राजा के पास गई। राजा ने उससे पूछा भद्रे इस प्रकार तुम रो क्यों रही हो। तब बंधुश्री बोली हे देव मेरी पुत्री कनकश्री को जिनदत्ता सौत ने मार डाला। यह बात सुनकर राजा ने दोनों दंपति को पकड़ लाने के लिए सैनिक भेजे। परंतु वे सभी सैनिक जिन शासन देवी पुण्य देवी के द्वारा कील दिए गए। मंदिर जाने वाले स्त्री–पुरुषों से यह वृतान्त सुनकर जिनदत्ता ने कहा– पूर्वोपाजि कर्म किसी के द्वारा उलंघन नहीं किए जा सकते। कार्योत्सर्ग पूरा कर जिनदत्ता विचार करने लगी यह कलंक मेरे लिए ही आया है। पूर्व भव में जो किया है वह अन्यथा नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर जिन शासन देवी के लिए उपसर्ग दूर करने के लिए फिर से कार्योत्सर्ग किया। अंतरंग बहिरंग कषाय शरीर से ममत्व त्याग दोनों प्रकार का संन्यास लेकर जिन मंदिर में बैठ गई। उसके कार्योत्सर्ग से आकृष्ट होकर जिन शासन देवी ने कहा– बेटी तुम स्थिर रहो तुम्हारा यह उपसर्ग दूर हो जाएगा। और जैन धर्म की महत्ता प्रभावना होगी। ऐसा मान तुम धर्म ध्यान में तत्पर स्थिर होकर रहो। ऐसा कहकर जिन शासन देवी चली गई। जिनदत्ता भी नमस्कार मंत्र का उच्चारण करती हुई समाधि का नियम लिए खड़ी रही। इधर यह हो रहा था उधर शासन देवी द्वारा प्रेरित कापालिक पूरी नगरी में प्रत्येक घर–घर में कह रहा था– हे नगरवासी सुनो बंधुश्री ने आग्रह कर मेरे द्वारा प्रेरित वेताली विधा के द्वारा अपनी पुत्री को मरवा डाला है। ऐसा निश्चय करना चाहिए। कनकश्री ही इसकी बेटी दुष्ट विचार वाली और जिनद्रत्ता से ईर्ष्या करने वाली थी। इसलिये मार डाली गई। इस विषय में

विकल्प नहीं करना चाहिए। देवता व योगी के वचनों को सुनकर तथा लोगों ने कहा– जिनदत्ता निरपराध साध्वी स्त्री है। तदन्तर शासन देवी ने सुवर्ण रत्न तथा वस्त्र आदि के द्वारा जिनदत्ता की पूजा की तथा उसका जय–जयकार किया। सब लोगों से शुद्धता की बात कही। इसी अवसर पर देवों ने नगर के मध्य पंचाश्चार्य किए। यह सब देखकर राजा ने कहा– बंधुश्री दुष्टा है। अतः उसे गधे पर चढ़ाकर निकाल देना चाहिए। बंधुश्री ने कहा– मैंने अज्ञान से किया है मुझे प्रायश्चित्त दिलाया जाए। राजा ने कहा– इस पाप का प्रायश्चित्त कहीं सुना नहीं है। मित्र, द्रोही, कृतघ्नी, स्त्री की हत्या करने वाला और चुगलखोर इन चारों का प्रायश्चित्त हमने नहीं देखा। इस प्रकार राजा ने जब नगरी में फैला हुआ ढिंढोरा कापालिक के द्वारा सुना तो बंधुश्री को अपराधी जान नगर से निकाल दिया है। इस बंधुश्री ने अत्युग्र पाप का फल तत्काल देख लिया ऐसा सभासदों ने कहा और जिनदत्ता की रक्षा धर्म के द्वारा हो गई। राजा ने मन में विचार किया जैन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म की इतनी महिमा नहीं है ऐसा कह जैन मंदिर में गया सेठ–सेठानी को नमन कर और समाधि गुप्त मुनिराज को नमन कर बैठ गया। राजा ने मुनिराज से कहा– भगवान सेठ–सेठानी का उपसर्ग धर्म के माहात्म्य से दूर हुआ है। मुनिराज ने कहा– यदिष्टं तत्सर्व धर्मेण भवति जो इष्ट हैं वह सब धर्म से होता है। मुनिराज ने कहा–अस्मिन् संसारे धर्म विहाय सर्वभण्य नित्यं। अतएव धर्म कर्त्तव्यः। इस संसार में धर्म को छोड़कर सभी कुछ अनित्य है। अतएव धर्म करना चाहिए।

समस्या-देह धरे को कहा फल पायो'

एक राजा अपने दरबार में कभी–कभी कोई समस्या लाकर रखा करता था। अनेक विद्वान उस समस्या की पूर्ति पद्य में करके सुनाते थे। एक बार उस राजा ने ठसाठस भरे हुए राजदरबार में 'देह धरे को कहा फल पायो' यह समस्या रखी। बहुत से विद्वानों ने इसे वहीं कण्ठस्थ कर लिया।

समस्या पूर्ति को सुनाने का आठवां दिन निश्चित हुआ। साथ ही पुरस्कार की घोषणा भी सुनाई गई।

निश्चित दिन राज दरबार ठसाठस भर गया। विद्वान लोग क्रमशः समस्या पूर्ति को सुनाने लगे–

शैशव काल गयो सब खेलत, शिक्षण में चित नांहि लगायो।
यौवन में तिय संग रमौं, नित के धन जोड़न को चित चायो।।
वृद्ध भये सब अंग गये थकि, होश हवास सभी विसरायो।
खोय दिये पन तीनों वृथा नर! 'देह धरे को कहा फल पायो।।

दूसरा विद्वान सुनाने लगा–

जे शुभ पूरब कर्म विपाक, उदय, रस मानुष जन्म लहायो।
कर्मभूमि पुनि आरज खेत, त्रिवर्ण महान्वय जाति कहायो।।
पूरण अक्ष निरोग वपुः विपुलायु धनेश प्रताप बढ़ायो।
स्वानुभवामृत पान किये बिन, 'देह धरे को कहा फलपायो'।।

अब तीसरा विद्वान बोला–

हाथन से नहिं दान दियो नहिं, कानन को जिन शासन भायो।
नैनन से नहिं साधु विलोकिय, पाँवन से नहिं तीरथ धायो।।

पेट भरो धन पाप उजार्जित, गर्व से काहु न शीस नवायो।
धारि हृदय परमातम भक्ति न, 'देह धरे को कहा फल पायो।।

अब चौथा विद्वान बोला–

पाकर द्रव्य न दान दियो नहिं, भोग कियो धन यो हि गमायो।
ज्ञान उपाय कहा भयो जो न, हिताहित भेद विज्ञान लहायो।।
वाचक शक्ति भये कहा होत, न जीवन को शुभ मार्ग बतायो।
पाय नृजन्म कियो तप त्याग न, 'देह धरे को कहा फल पायो।।'

चारों विद्वानों द्वारा क्रमशः समस्या पूर्ति श्रवण कर सभा मंत्र मुग्ध हो गई। जीवन का वास्तविक भान जो उन्हें आज हुआ था।

—o—

जिसे कि हमें प्राप्त करना है

एक नगरी में दिगबर महर्षि आये। दर्शनार्थ हजारों नर–नारी आ पहुँचे। अब महात्मा जी को मोक्ष (संसार के दुःखों का अत्यन्त अभाव) के विषय में प्रवचन होने लगा तो एक व्यक्ति ने कहा– "महात्मन! जिस प्रकार ज्वर आदि रोगों के प्रत्यक्ष दीखने पर वैद्य डाक्टर लोग तर्क–विर्तक करके उसके होने के कारणों का अन्वेषण करते हैं और इलाज करने के लिए उद्यत होते हैं, ठीक इसी प्रकार मोक्ष प्रत्यक्ष दीखने पर ही उसके उपाय का अन्वेषण किया जा सकता है और उस पर चलने का प्रयत्न किया जा सकता है परन्तु मोक्ष तो दिखता नहीं, इसलिए उसका उपाय बताना व्यर्थ है?"

समस्या-देह धरे को कहा फल पायो'

एक राजा अपने दरबार में कभी–कभी कोई समस्या लाकर रखा करता था। अनेक विद्वान उस समस्या की पूर्ति पद्य में करके सुनाते थे। एक बार उस राजा ने ठसाठस भरे हुए राजदरबार में 'देह धरे को कहा फल पायो' यह समस्या रखी। बहुत से विद्वानों ने इसे वहीं कण्ठस्थ कर लिया।

समस्या पूर्ति को सुनाने का आठवां दिन निश्चित हुआ। साथ ही पुरस्कार की घोषणा भी सुनाई गई।

निश्चित दिन राज दरबार ठसाठस भर गया। विद्वान लोग क्रमशः समस्या पूर्ति को सुनाने लगे–

शैशव काल गयो सब खेलत, शिक्षण में चित नांहि लगायो।
यौवन में तिय संग रमौ, नित के धन जोड़न को चित चायो।।
वृद्ध भये सब अंग गये थकि, होश हवास सभी विसरायो।
खोय दिये पन तीनों वृथा नर! 'देह धरे को कहा फल पायो।।

दूसरा विद्वान सुनाने लगा–

जे शुभ पूरब कर्म विपाक, उदय, रस मानुष जन्म लहायो।
कर्मभूमि पुनि आरज खेत, त्रिवर्ण महान्वय जाति कहायो।।
पूरण अक्ष निरोग वपुः विपुलायु धनेश प्रताप बढ़ायो।
स्वानुभवामृत पान किये बिन, 'देह धरे को कहा फलपायो'।।

अब तीसरा विद्वान बोला–

हाथन से नहिं दान दियो नहिं, कानन को जिन शासन भायो।
नैनन से नहिं साधु विलोकिय, पाँवन से नहि तीरथ धायो।।

पेट भरो धन पाप उजार्जित, गर्व से काहु न शीस नवायो।
धारि हृदय परमातम भक्ति न, 'देह धरे को कहा फल पायो।।

अब चौथा विद्वान बोला–

पाकर द्रव्य न दान दियो नहि, भोग कियो धन यो हि गमायो।
ज्ञान उपाय कहा भयो जो न, हिताहित भेद विज्ञान लहायो।।
वाचक शक्ति भये कहा होत, न जीवन को शुभ मार्ग बतायो।
पाय नृजन्म कियो तप त्याग न, 'देह धरे को कहा फल पायो।।'

चारों विद्वानों द्वारा क्रमशः समस्या पूर्ति श्रवण कर सभा मंत्र मुग्ध हो गई। जीवन का वास्तविक भान जो उन्हें आज हुआ था।

—o—

जिसे कि हमें प्राप्त करना है

एक नगरी में दिगबर महर्षि आये। दर्शनार्थ हजारों नर–नारी आ पहुँचे। अब महात्मा जी को मोक्ष (संसार के दुःखों का अत्यन्त अभाव) के विषय में प्रवचन होने लगा तो एक व्यक्ति ने कहा– "महात्मन! जिस प्रकार ज्वर आदि रोगों के प्रत्यक्ष दीखने पर वैद्य डाक्टर लोग तर्क–विर्तक करके उसके होने के कारणों का अन्वेषण करते हैं और इलाज करने के लिए उद्यत होते हैं, ठीक इसी प्रकार मोक्ष प्रत्यक्ष दीखने पर ही उसके उपाय का अन्वेषण किया जा सकता है और उस पर चलने का प्रयत्न किया जा सकता है परन्तु मोक्ष तो दिखता नहीं, इसलिए उसका उपाय बताना व्यर्थ है?"

इस पर महात्मा जी कहने लगे, तुमने कभी कुए पर चलने वाले अरहट (घटीयंत्र, रेहट) को देखा होगा। वहाँ जिस प्रकार अरहट का घूमना उसके धुरे के घूमने से होता है और धुरे का घूमना उसमें जुते हुए बैल के घूमने पर होता है। यदि बैल का घूमना बन्द हो जाय तो धुरे का घूमना बन्द हो जाता है और धुरे को रुक जाने पर अरहट का घूमना रुक जाता है उसी प्रकार कर्मोदय रूपी बैल के चलने पर ही चार गति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) रूपी धुरे का चक्र चलता रहता है और चतुर्गति रूपी धुरा ही, अनेक प्रकार की शारीरिक मानसिक आदि वेदनाओं रूपी अरहट को घुमाता रहता है। कर्मोदय के रुक जाने से चतुर्गति का चक्र रुक जाता है और उसके रुकने से संसार रूपी अरहट का परिचलन समाप्त हो जाता है। बस, इसी का नाम मोक्ष है।

यद्यपि यहां दृष्टांत देकर मोक्ष की सिद्धि की गई है, परन्तु ऊपर के दृष्टान्त में जिस प्रकार मात्र बैल के रुक जाने से दूर में खड़ा हुआ व्यक्ति यह अनुमान लगा लेता है कि इस समय अरहट (कुएं से पानी निकालने वाला घटीयंत्र) नहीं चल रहा है और उसका यह अनुमान घटी यंत्र के नहीं दिखने पर भी अक्षरशः सत्य और सुनिश्चित है उसी प्रकार कर्मोदय के बन्द हो जाने पर मोक्ष स्वयं सिद्ध है क्योंकि संसार के दुःखों का अत्यन्त अभाव अथवा अविनाशी अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति का होना ही मोक्ष है जो कि कर्मोदय के बन्द हो जाने से होता है।

इसी विषय को इस प्रकार भी ठीक–ठीक समझा जा सकता है, कि जिस प्रकार बीज के अत्यन्त जल जाने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार अंकुर रूप संसार अवस्था के कारण भूत कर्म रूपी बीज के नष्ट हो जाने पर संसार में परिभ्रमण नहीं करना पड़ता अर्थात् दुखों का सदा के लिए विनाश हो जाता है।

जिस प्रकार आगे होने वाला सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण प्रत्यक्ष दिखता नहीं, फिर भी शास्त्रों से ठीक–ठीक ज्ञान कर लिया जाता है और उसी प्रकार वैसा ही होता है, इसी प्रकार मोक्ष भी धर्म शास्त्रों से निराबाध सिद्धि को प्राप्त होता है।

समस्त शिष्टवादी, अप्रत्यक्ष होने पर भी मोक्ष को मानते हैं इसलिए भी हमें विश्वास करना चाहिए क्योंकि पूज्य पुरुषों के वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं होते। यदि हमें अनेक पूज्य पुरुषों ने यह बताया है कि 'यह तुम्हारे पिता के पिता का चित्र है, उनमें अमुक–अमुक बातें थीं, उन्होंने समाज में अमुक–अमुक कार्य किये हैं तो हमें शत–प्रतिशत विश्वास हो जाता है कि वास्तव में जो ये कहते हैं, वह अक्षरशः सत्य है इसमें अंश मात्र भी धोखेबाजी नहीं है।' इस प्रकार युक्ति, धर्मशास्त्र और पूज्य पुरुषों की वाणी से मोक्ष निराबाध सिद्ध है जिसे कि हमें प्राप्त करना है।

ध्यान–धनुष को थाम ले, ज्ञान बाण दे तान।
कर्म शत्रु को मार दे, तो पावे निर्वाण।।
काय रूप जिस अश्व पर, बैठा आत्म सवार।
यदि मन रूपि लगाम को, साधे तो भव पार।।

—o—

तीर्थंकर नेमिकुमार की वीरता

एक बार श्रीकृष्णा जी की राजसभा में चर्चा चली कि श्रीकृष्णा, बलदेव और नेमिकुमार इन तीनों में सबसे अधिक बलवान कौन है?

किसी ने श्रीकृष्णा को, किसी ने बलदेव को और किसी ने नेमिकुमार को बलशाली बतलाया। इनमें श्रीकृष्णा नारायण अर्धचक्री थे। बलदेव बदभद्र थे और नेमिकुमार तीर्थंकर थे। लोग निर्णय पर नहीं पहुँच पा रहे थे कि तीनों में बलशाली कौन हैं?

नेमिकुमार ने अपना पैर जमाकर कहा– जो हमारा पैर हिला देगा वही सबसे बलवान है। श्रीकृष्ण तथा बलदेव भी उस पैर को नहीं हिला सके। फिर नेमिकुमार ने हाथ और हाथ की ऊंगली मोड़ने को कहा, किन्तु कोई उँगली भी न मोड़ सका।

यह देखकर श्रीकृष्ण को चिन्ता हुई कि राज्य का अधिकारी नेमिकुमार होगा। एक बार ये सब जल–क्रीड़ा करने गये थे। स्नान करने के बाद नेमिकुमार ने अपनी भावज रुक्मणि से कहा–भावज! मेरी धोती निचोड़ देना। रुक्मणि ने उत्तर दिया– देवर जी! हम तो नाग शय्या पर बैठकर शंख बजाने वाले की ही धोती धोते हैं।

यह सुनकर नेमिकुमार ने राजभवन में जाकर नाग शय्या पर बैठकर इतने जोर से शंखध्वनि की कि सारी द्वारिका में तहलका मच गया। लोगों ने घोर ध्वनि को सुनकर अपने

कान बन्द कर लिये। पक्षी उड़कर भागने लगे। अब तो श्रीकृष्णा आदि को पूर्ण निश्चय हो गया कि नेमिकुमार के समान कोई वीर इस दुनिया में नहीं है तथा यह सोचकर ही नेमिकुमार को विरागी बनाने के लिए विवाह का आडम्बर किया।

महर्षि मानतुंग की भक्ति

महर्षि मानतुग श्रेष्ठ विद्वान एवं महान तपस्वी थे। एक बार वे विहार करते हुए राजा भोज को राजधानी धारानगरी में आये और नगर के एकान्त में ठहर गये।

नगर के नर–नारी दर्शनाथ पहुँचे। सदुपदेश सुनकर सभी बहुत प्रभावित हुए। जब राजा के कानों तक यह समाचार पहुँचा तब वे भी दर्शन करने के लिए समस्त राज्याधिकारियों के साथ गये। प्रसिद्ध कवि कालिदास भी उनके साथ थे। ईर्ष्यावश उन्होंने कुछ छेड़छाड़ करके शास्त्रार्थ शुरू कर दिया। आचार्य श्री ने शास्त्रार्थ में कालिदास को पराजित कर दिया।

कवि कालिदास बहुत लज्जित हुए। उन्होंने रात को काली की उपासना करके प्रातः राजा भोज से कहा– राजन्! जैन साधु मानतुंग को राजभवन में बुलावें, मैं उनसे शास्त्रार्थ करूंगा। राजा ने मुनि को बुलाने को एक सिपाही भेजा, किन्तु मुनिराज ने उत्तर दिया–मुझे राजकाज से क्या प्रयोजन है? राजा को कोई काम हो तो यहीं आकर पूछ लें।

सिपाही ने जाकर यह समाचार राजा भोज को सुना दिया। वह उत्तर सुनकर कालिदास ने राजा को भड़का दिया। राजन् ! वह साधु तो बहुत अभिमानी है। इसी से उसका नाम मानतुंग रखा है। देखिये– आपको भी कुछ नहीं समझता। राजा का राज्यपद जागृत हो गया। वे क्रोधित हो बोले– जैन मुनि को जबरन ले आओ।

राज्य कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। मुनिराज ने अपने ऊपर उपसर्ग आया जानकर मौन धारण कर लिया और आत्म निमग्न हो गये। राजा ने आज्ञा दी– हमारे विद्वान के साथ शास्त्रार्थ कीजिए, अन्यथा कारावास दिया जायेगा।

मुनि मानतुंग ने जब राजा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया तो राजा भोज और भी अधिक क्रोध से भभक गया। मर्हिष को चुपचाप बैठा देखकर राजा ने हथकड़ी बेड़ी पहना कर बन्दीघर के ४८ कोठों के भीतर बन्द कर देने की आज्ञा दे दी। राज्य कर्मचारियों ने ऐसा ही किया।

अपने ऊपर घोर उपसर्ग आया जानकर मर्हिष ने भगवान ऋषभनाथ की स्तुति करने के लिए भक्तामर महाकाव्य की रचना की। उसके ४८ काव्य पढ़ते ही कोठों के ४८ तोले टूट गये और वे अपने आप ४८ कोठों के बाहर आ गये। पहरेदार यह देखकर दंग रह गया। कर्मचारियों ने इस घटना की सूचना राजा को दी। राजा ने बन्दीगृह में जाकर यह चमत्कार स्वयं अपनी आँखों से देखा, तब उसे महर्षि की महत्ता और अपनी भूल मालूम हुई। राजा ने महर्षि के चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा याचना की। महर्षि

ने सबको क्षमा कर दिया।

महर्षि मानतुंग ने निष्काम भाव से भगवान आदि नाथ की भक्तामर स्त्रोत रचकर स्तुति की थी जिससे उनका संकट अपने आप दूर हो गया। निष्काम भक्ति का अपूर्व प्रभाव है।

भक्ति–भजन का, करलो चित्त लगाय।
निश्चय बेड़ा पार है, दुःख सभी टल जाय।।

—o—

मूर्ति का महत्व

एक समय कुम्भाराणा ने क्रोध के वशीभूत हो, बिना सोचे समझे यह प्रतिज्ञा कर डाली कि जब तक मैं बूंदी का दुर्ग (किला) नहीं तोड़ लूँगा, अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा। लेकिन यह कार्य एक दो दिन में हो नहीं सकता था। असली किले के टूटने से पहले राणा की मृत्यु का होना भी सम्भव था। इसलिए प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए, मंत्रियों ने यह अनुमति दी कि उस किले की मूर्ति बनवाकर उसे तोड़ डालिये।

किले की मूर्ति, तोड़ी जाने के अभिप्राय से बनकर तैयार हो गई, साथ ही राणा द्वारा उसे तोड़े जाने का समय निश्चित हो गया।

कर्मयोग की बात कि उसी राणा के यहाँ बूंदी का एक सामन्त, बूँदी–नरेश से विद्रोह करके चला आया। उसने जब बूँदी–अपने देश के किले की मूर्ति के तोड़ने का

समाचार सुना तो उसे यह तनिक भी सहन नहीं हुआ कि उसके सामने उसके देश के दुर्ग की मूर्ति नष्ट की जाय।

तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला मैं मान के।
पूजते हैं भक्त क्या? प्रभु मूर्ति को जड़ जान के।।

अज्ञान उसको भले ही, जड़ कहें अज्ञान से।
देखते भगवान को धीमान उसमें ध्यान से।।

ऐसा विचार कर वह राणा से लड़ा और उसने अपने जीवन रहते हुए अपने देश के किले की मूर्ति को तोड़ने नहीं दिया। अतः मूर्ति के दर्शन, पूजन आदर आदि करना बहुत ही महत्व की बात है। संसार के कोई भी कार्य बिना मूर्ति (आकार) के सफल नहीं होते हैं, यह बात अनेकों अकाट्य युक्तियों द्वारा निर्विवाद सिद्ध है।

चित्र थकी नारी लखे, मन गंदला बहु होय।
मूर्ति शान्त जिनेश की, देखे पाप जु खोय।।

—o—

क्रोध की औषधि

एक व्यक्ति, जिसे बात–बात पर क्रोध आता था और कितने ही उपाय कर लेने पर भी जब वह क्रोध को दूर नहीं कर सका तो एक बार दिगम्बर जैनाचार्य श्री वादीभसिंह के निकट पहुँचा। वह सिर नवाकर नम्रतापूर्वक आचार्य श्री से निवेदन करता है, गुरुदेव! क्रोध का दुष्परिणाम अनेक

बार भोग चुका हूँ, अतः ऐसा कोई उपाय बताइये कि जिससे यह चाण्डाल सदा के लिए नष्ट हो जाय।

गुरुदेव ने प्रार्थी पुरुष को, मुमुक्षु जानकर कहना प्रारम्भ किया–'हे भाई! जब तेरी दृष्टि किसी दुश्मन पर पड़ती है तब सहसा तेरे अन्तर मानस में रोष उभरता हुआ दिखाई देता है, नेत्रों से रक्त की धारायें बहने लग जाती हैं, भृकुटी चढ़ जाती है, ओष्ठ फड़फड़ाने लग जाते हैं, दांत कटकटाने लग जाते हैं, शरीर में कम्पन के साथ एक विचित्र गति होने लग जाती है। दुबले पतले इस शरीर में रक्त संचार तीव्र गति से होने लगता है, बल बढ़ जाता है जैसे कि कोई पिशाच अन्दर से प्रवेश कर गया हो।

क्रोध की अग्नि से संतृप्त हुआ तू अपने अपराध करने वाले दुश्मन को सन्तापित करने के लिए कचहरी के द्वारों को भी खटखटाने लगता है, उसे दबाने अथवा मारने का उपाय करता है साथ ही मुख से गालियों की बौछारें छोड़ने लगता है, पर देख! यह सब तेरी क्रियाएँ दुर्बलता और अज्ञानता की सूचक हैं।

लेकिन भाई! तूने कभी इस पर गहराई से विचार भी किया है, कि वास्तव में स्वयं का शत्रु कौन है? जिसने स्वयं को बिगाड़ किया है, वही तो स्वयं का शत्रु है। संसार में अपकार करने वाला ही शत्रु कहा जाता है, उस पर ही स्वयं को क्रोध आता है। लेकिन भीतरी शत्रु तो आत्मा का उपकार करने वाला क्रोध ही है जिसने स्वयं को अपने स्वरूप से विमुख किया। अपने धर्म, अर्थ, काम में विघ्न उपस्थिति

किया। इस प्रकार शत्रु ने ही तेरी ज्ञान विधि का अपहरण किया है। बैर–विरोध को बढ़ाबा दिया है, फिर भी तू उस अपकारी दुष्ट क्रोध पर क्रोध नहीं कर रहा है, उस पर विजय पाने के लिए कोई उपाय नहीं कर रहा है। यही तेरी भूल है।

वस्तुतः क्रोध ही तेरा शत्रु है। अतः तुझे क्रोध आता ही है तो उस आने वाले क्रोध पर ही क्रोध कर! इससे तू क्षमा रूपी तलवार का धारक होकर उस क्रोध बैरी की पूर्ण रीति से निपात कर सकेगा। ऐसा करने से संसार में तेरा कोई भी शत्रु नहीं रहेगा। सभी मित्र बन जायेंगे। उस समय तुझे अपने आत्मा में अनुपम आनन्द की अनुभूति होगी। अतः क्रोध पर क्रोध करना ही श्रेयस्कर है।

—o—

अक्रोध की परीक्षा

एक जिज्ञासु एक बार एक महात्मा के पास गया और बोला– 'महाराज! कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुझे आत्मा का साक्षात्कार हो जाय।'

महात्मा ने उसे एक महीने तक एकान्त में मौन पूर्वक भजन करने की आज्ञा दी। जिज्ञासु वैसा ही करने लगा। महात्मा की कुटिया के पास एक महतर सफाई करने आया करता था। माह पूरा होने के दिन महात्मा ने उससे कहा– आज जब वह जिज्ञासु स्नान करके मेरे पास आने लगे, तब तुम अपनी झाड़ू से थोड़ी धूल उस पर उड़ा देना। जिज्ञासु

जब स्नान करके गुरु के पास चला, रास्ते में धूल उड़ा दी। अब तो क्रोधित होकर वह उसे मारने दौड़ा, महतर भाग निकला। वह फिर से स्नान करके पवित्र वस्त्रों को धारण करके गुरु के पास पहुँचा। कहा–महाराज! मैं एक महीना तक मौन पूर्वक स्वाध्याय करके आया हूँ।' गुरु ने कहा–'अभी तो तुम सर्प के समान काटने दौड़ते हो, तुम्हें आत्मा का साक्षात्कार कैसे होगा?

'जाओ! एक माह फिर भजन करो।' जिज्ञासु फिर भजन में लीन हुआ। दूसरा माह पूर्ण हुआ। ज्यों ही वह स्नान करके गुरु के पास जाने लगा कि गुरुजी की आज्ञा से महतर ने आज झाड़ू छुआदी। इस बार उसने महतर को दो चार कड़ी बात कहकर छोड़ दिया। पुनः स्नान करके वह जब गुरु के पास पहुँचा, तब गुरु ने कहा– 'अभी तो तुम्हारा मन सर्प की तरह फुंकार मारता है, अभी समय लगेगा। फिर जाओ और एक माह तक भजन करो।

जिज्ञासु लौट गया और फिर एक महीने तक उसने भजन किया महीना पूर्ण होने पर जब वह गुरु चरणों में चला, तब सिखाये हुए महतर ने इस बार कूड़े से भरी टोकरी ही उठाकर उसके सिर पर उडेल दी। लेकिन आज वह जिज्ञासु क्रोधित होने के बजाय सच्ची दीनता में भरकर महतर के चरणों में गिर पड़ा और कहा– भाई! तूने मेरा बड़ा ही उपकार किया है। तू नहीं होता तो मैं क्रोध को किस प्रकार जीत सकता, कैसे उसके चंगुल से छूटता? मैं तेरा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। तुझे धन्य है।

इसके बाद जिज्ञासु महात्माजी के पास गया और वह गुरु कृपा ने क्रोध को तिलांजलि देकर आत्मा का साक्षात्कार करने में सफल हुआ।

—o—

प्रतिभापूर्ण उत्तर

एक पाठशाला में एक लड़के को, बहुत से विद्यार्थी चिढ़ाया करते थे, क्योंकि एक आँख से उसे दीखता नहीं था।

एक बार सभी लड़के कहने लगे— 'तू हम दो आँख वालों की बराबरी नहीं कर सकता....'

उससे रहा नहीं गया, उसने कहा, 'इसका निर्णय प्रधानाध्यापक जी से कराइये' और शीघ्र ही सब वहाँ पहुँच गये।

अन्धे लड़के ने कहा— हेड मास्टर साहब! ये सब लड़के कहते हैं कि तू हम दो आँख वालों की बराबरी नहीं कर सकता, क्या यह बात ठीक है?

प्रधानाध्यापक असमंजस्य में पड़ गया। वह तुरन्त बहुमत के भय से बोला— ये छात्र ठीक तो कहते हैं।

अन्धा लड़का बोला— देखिये साहब! न्याय का गला नहीं घोटा जाना चाहिए। ये तो अपनी दो—दो आँखों से मेरी ही आँख को देखते हैं, जबकि मैं अकेला अपनी एक ही आँख से सबकी दो—दो आँखों को देखता हूँ!

इस प्रतिभापूर्ण उत्तर को श्रवण कर सब चकित रह गये।

—o—

सेठ हरसुखराय !

वह भी समय था, जबकि हमारे पूर्वज (पुरखे) लक्ष्मी की उपासना न करके उस पर शासन करते थे। धन की दीन दुखियों एव आत्म साधना की सिद्धि करने वाले साधुओं के लिए कौड़ियों की तरह बखेरते थे, लेकिन वह कम नहीं होता था, अपितु बढ़ता ही रहता था। अन्धे, लूले, लँगड़ों और असहायों की सहायता करते थे, परन्तु डरते हुए! कहीं ऐसा न हो कि कोई भाई बुरा मान जाय और कह बैठे— "हम कर्मों के सताये हुए हैं तो तुम्हें धन्ना सेठी जतानी नसीब हुई!"

धार्मिक तथा लोकोपयोगी कार्यों में लाखों रुपये लगाते थे, परन्तु भय बना रहता था कि कहीं किसी को आत्म—ख्याति या आत्म—विज्ञान की गन्ध न आ जाय! किये हुए धर्म—दान की प्रशंसा सुन पड़ती थी तो बहरे बन जाते थे, जिससे आत्म प्रशंसा सुनकर अभिमान न हो जाय। आत्म प्रशंसा सुनने के वे कभी भी उत्सुक नहीं हुए। लक्ष्मी के उपासक न होकर वे वीतरागता के उपासक थे। धन से वे तनिक भी ममता न रखते थे। उनका विश्वास था कि सुई के छिद्र में हजारों ऊँटों का निकल जाना तो सम्भव, पर धनपति का संसार सागर से पार होना सम्भव नहीं। इसलिए वे लक्ष्मी को ठुकराते थे तथा उसके बल पर सम्मान नहीं चाहते थे, लेकिन होता इसके विपरीत। लक्ष्मी उनके पावों

से लगी फिरती थी। कोयलों में हाथ डालते तो मोहरें बन जाती थीं और सर्प पर पैर पड़ता तो वह रत्नहार बन जाता था।

वे धन प्राप्ति के लिए आधुनिक युग की तरह भगवान को प्रसन्न करने का हास्यास्पद प्रयत्न नहीं करते थे और न रुपये, दो रुपये के खील बताशे मेले में बांटते हुए भिखारियों के सिर पर पावं रखकर दानवीर कहलाने की लालसा रखते थे। डेढ़ रुपये की काठ की चौकी मन्दिर में चढ़ाते हुए उसके पायों पर चारों भाइयों का नाम लिखाने की इच्छा नहीं रखते थे और न अपने स्वर्गीय पिता, माता या पत्नी की पवित्र स्मृति में सवा रुपये का छत्तर चढ़ाकर कीर्ति ही लूटना चाहते थे। उन्हें पद–प्रतिष्ठा तथा यश–मान की लालसा न होकर आत्मोद्धार की ही कामना बनी रहती थी।

नेकी करके कुएं में फैंकने वाले ऐसे ही माई के लालों में देहली के सेठ हरसुखराय जी हुए हैं। इन्हें बादशाह की ओर से राजा की पदवी प्राप्त थी। सन् १७६० में देहली के धर्मपुरे के मौहल्ले में इन्होंने एक अत्यन्त दर्शनीय भव्य जैन मन्दिर का निर्माण कराया, जिसकी लागत उस समय की आठ लाख अनुमान की जाती है। यह मन्दिर जब सात वर्ष में बनकर तैयार हुआ तो एक दिन लोगों ने सुबह उठकर देखा कि मन्दिर का सारा कार्य सम्पूर्ण हो चुका है, केवल शिखर पर एक–दो दिन का कार्य बचा है, किन्तु कार्य रुका

हुआ है और सेठ साहब, जो सर्दी–गर्मी बरसात में प्रति समय, मजदूरों में खड़े काम कराते थे आज वहाँ नहीं हैं।

लोगों को अनुमान लगाते देर न लगी। एक सज्जन बोले, "हम पहले ही कहते थे, इस मुसलमानी राज्य में जब तक प्राचीन मन्दिर ही रखने कठिन हो रहे हैं, तब नया मन्दिर कैसे बन पायगा?" दूसरे सज्जन अपनी अक्कल की दौड़ लगाते हुए बोले उठे–"कोई बात नहीं, सेठ साहब बादशाह के खजांची हैं, मन्दिर बनाने की अनुमति ले ली होंगी। लेकिन, शिखर बन्ध मन्दिर कैसे बनवा सकते थे? यदि मन्दिर का शिखर बनाने कीर आज्ञा दे दी जाय, तो मस्जिद और मन्दिर में अन्तर ही क्या रह जायगा?"

तीसरे ने अटकल लगाते हुए कहा– "बिलकुल ठीक, मन्दिर के शिखर को मुसलमान कैसे सहन कर सकते है? देखो न, शिखर बनता देख, शीघ्र ही काम रुकवा दिया।"

किसी ने कहा– "अरे भाई! सेठ साहब का क्या बिगड़ा, वे तो मुँह छिपाकर घर में बैठे गये। नाक तो हमारो कटी! भला अब हम किसी को क्या मुँह दिखाएँगे। इस बेइज्जती से तो क्या अच्छा था कि मन्दिर की नीवं ही न खुदवाते!!"

जिस प्रकार म्युनिस्पैलिटी का जमादार ऊँचे–ऊँचे महल और मकान तथा उनमें रहने वाले नर–नारियों को न देखकर गन्दगी को ओर ही दृष्टिपात करता है, कहाँ–कहाँ कैसी–कैसी गन्दगी है, इस ही ओर ध्यान देता है, उसी प्रकार छिद्रानुवेषी गुण न देखकर अवगुण ही ढूँढते

फिरते हैं। जो मात्र नुक्ताचीं थे, वे नुक्ताचीनी करते रहे, लेकिन जिन्हें धर्म कें प्रति प्रेम था उन्होंने सुना तो अन्न, जल त्याग दिया। पेट पकड़े हुए सेठ हरसुखराय जी के पास पहुँचे और आँखों में आँसू भरकर अपनी व्यथा को प्रकट करते कहने लगे–

"आपके होते हुए भी जैन मन्दिर अधूरा पड़ा रह जाय! तब तो समझये कि भाग्य ही हमारे प्रतिकूल है। आप तो कहते थे कि बादशाह सलामत ने शिखर बनाने के लिए स्वयं ही अपनी इच्छा प्रकट की थी, फिर एकाएक यह कठिनाई क्यों उपस्थि हुई।"

सेठ साहब ने पहले तो टालमटूल की बात कीं। फिर मुँह नीचा करके सकुचाते हुए बोले–"भाइयों के आंगे अब गुप्त रखना भी ठीक नहीं मालूम होता। वास्तव में बात यह है कि जो कुछ थोड़ी सी पूँजी थी वह सब समाप्त हो गई, उधार, मैं किसी से लेने का आदी नहीं, सोचता हूँ भाइयों से चन्दा करलूँ लेकिन कहने की हिम्मत नहीं होती। इसलिए लाचार हो कार्य बन्द कर दिया गया है।"

सुना तो बाहें चढालीं– "बस, सेठ साहब इतनी छोटी सी बात!' कहकर आगन्तुक सज्जनों ने अशर्फियों का ढ़ेर लगा दिया और बोले– आपकी पादुका जायँ चन्दा मांगने। हम लोगों के होते आपको इतनी आपत्ति! धिक्कार है हमारे जीवन पर!

सेठ साहब कुछ मुस्कराते और कुछ लजाते हुए बोले–"हाँ मैं अपने सहधर्मी भाइयों से इसी उदारता की आशा रखता था। लेकिन इतनी रकम का मुझे करना क्या है? दो चार दिन के कार्य के लिए जितनी आवश्यकता है, उसे यदि मैं लूँगा तो सारी बिरादरी से लूँगा, नहीं तो एक से भी नहीं।'

व्यर्थ का कोई तर्क–विर्तक नहीं हुआ। प्रत्येक जैन घर से नाम मात्र को चन्दा लिया गया। मन्दिर बनकर जब सम्पूर्ण हुआ तो बिरादरी ने बड़ी विनय से बार–बार कहा, सेठ साहब मन्दिर आपका है, आप ही कलशारोहण करें। सेठ साहब पगड़ी उतार कर बोले, "भाइयों ! मन्दिर मेरा नहीं, पंचायत का है, सभी ने चन्दा दिया है, अतः पंचायत ही कलशारोहण करे और आज से इसके प्रबन्ध की जिम्मेदार है।"

लोगों ने सुना तो अवाक् रह गये, अब उन्होंने इस थोड़ी पूँजी के लिए चन्दा उगाहने के रहस्य को समझा।

यह मन्दिर आज भी उसी तरह अपना सीना ताने हुए गत गौरव का बखान कर रहा है। इस मन्दिर की निर्माण कला देखते ही बनती है। समोशरण में संगमरमर की वेदी में पच्चीकारी का काम बिलकुल अनूठा और अभूतपूर्व है। कई अंशों में ताजमहल से भी अधिक बारीक और अनुपम काम इस वेदी पर हुआ है। वेदी में बने हुए सिंहों की मूछों

के बाल पत्थर में खुदाई करके काले पत्थर के इस तरह अंकित किये गये हैं कि कारीगर के हाथ चूम लेने को जी चाहता है और सेठ हरसुखराय जी की इस सुरूचि के लिए वाह–वाह निकल पड़ती है। श्री जिन भगवान की प्रतिबिम्ब इस वेदी में जिस पाषाण कमल पर विराजमान है वह देखते ही बनता है।

यद्यपि प्राचीन कला से अनभिज्ञ और जापानी टाइलों से आकर्षित बहुत से जैन बन्धुओं को यह मन्दिर अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका है, फिर भी जैनों के लाख–लाख छिपाने पर विदेशों में इसकी भव्य कारीगरी की चर्चा है और विदेशी यात्री देहली आने पर इस मन्दिर को देखने का अवश्य प्रयत्न करता है।

इस मन्दिर की जब प्रतिष्ठा हुई थी, तो सभी कीमती सामान मुसलमानों ने लूट लिया था, किन्तु बादशाह के हुक्म से वह सब सामान लुटेरों को वापस करना पड़ा। सेठ हरसुखराय जी शाही खजांची थे और बादशाह की ओर से उन्हें राजा की पदवी मिली हुई थी। उन्हीं के सुपुत्र सेठ सुगनचन्द जी हुए हैं। जिन्हें भी पिता के बाद राजा की उपाधि और शाही खजांचीगिरि प्राप्त हुई थी और वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल तक इन्हीं के पास रही। ऐसे थे वे सेठ हरसुखराय जी।

–o–

अब हम अमर भये न मरेंगे

कविवर पंडित भागचन्दजी एक बहुत बड़े आध्यात्मिक कवि हो गये हैं। उन्होंने अनेकों अध्यात्म के भजनों की रचना की है। जब वे जीवन के अन्तिम दिनों में मरणासन्न अवस्था में शान्त लेटे हुए थे तब वे रोग शय्या पर पड़े–पड़े एक भजन बनाने लगे– 'अब हम अमर भये न मरेंगे।' इसको वे बार–बार गुन–गुना रहे थे।

चेहरे पर अपूर्व आनन्द झलक रहा था। एक साथी ने आकर पूछा– 'पंडित जी! इस अवसर पर भी आपको शान्ति है। संसार मृत्यु से घबराता है पर आप तो हँस रहे हैं। पंडितजी ने कहा– 'जहां मैं हूँ अर्थात् आत्मा की ओर ध्यान है वहाँ मृत्यु का भय नहीं, दुख नहीं, संकट नहीं और जहाँ मृत्यु का भय, दुख व संकट है वहाँ मैं अर्थात् आत्मा की ओर ध्यान नहीं। वे फिर अपनी धुन में मग्न होते हुए गुनगुनाने लगे– 'अब हम अमर भये न मरेंगे।'

–o–

आत्मा रूपी बगीचा

दक्षिण भारत के एक दिगम्बर मुनि बहुत तपश्चर्या किया करते थे। एक–एक दो–दो उपवास के बाद भोजन जल–पान करना उनके लिए साधारण बात थी। अधिकाँश समय वे मौन साधना में व्यतीत करते थे। शरीर बहुत कृश

हो गया था।

उनके शरीर को अत्यस्त कृत देखकर एक दर्शनार्थी ने पूछा– 'मुनिराज! आपका शरीर इतना कृत कैसे हो गया?' मुनिराज ने सहज भाव में उत्तर दिया– 'संसार के प्रत्येक प्राणी के दो बगीचे हैं। पहला आत्मा और दूसरा शरीर। जिन मुनियों को आत्मिक ज्ञान प्राप्त हो गया है तथा जो स्वानुभव प्रिय हैं वे मुनि आत्मा रूपी बगीचे को ही खुराक देते रहते हैं अतः उनका आत्मारूपी बगीचा हमेशा हरा–भरा व प्रफुल्लित रहता है। शरीर रूपी बगीचे की ओर उनकी उपेक्षा दृष्टि होने से वह सूखकर कृश हो जाता है। वही दृश्य तुम्हारी आँखों के सामने है। रहस्य की बात समझकर दर्शनार्थी गद्‌गद् हो गया।

—o—

मनहूस कौन

अकबर के दरबार में किसी ने कहा कि नगर का सबसे मनहूस आदमी देवीलाल है। हर बात की परख करने का आदी बादशाह भला कैसे चुप रहता? बोला, 'देवीदयाल हाजिर किया जाय।'

उसके आने पर बादशाह ने स्वयं की प्रयोग करना चाहा। देवीदयाल रात भर बादशाह के कमरे में सोया। सुबह उठकर बादशाह ने उसी का मुंह देखा।

संयोग की बात कि ज्योहिं अकबर नाश्ते के लिए बैठा, सीमा के युद्ध की बुरी खबर लेकर दूत पहुंचा। बादशाह नाश्ता न कर सका। दोपहर के खाने के वक्त तक सलाह मशवरा चलता रहा और शाम को जब बादशाह खाने गया तो उसकी चेहती बेगम बीमार पड़ गई। भोजन कैसे करता।

दूसरे दिन उसने दरबार में हुक्म दिया, 'लोग सच कहते हैं, देवीदयाल बहुत मनहूस आदमी है। हम कल खाना नहीं खा सके, इसका मुंह देखकर। चाहते थे कि इसे फासी दें पर इसके बाल बच्चों पर रहम खाकर इसे देश निकाला ही दे रहे हैं।

दरबार में सन्नाटा छा गया। देवीदयाल फिर भी खुश था। उसे बीरबल ने सबेरे ही मन्त्र दे दिया था।

"कुछ कहना है तुम्हें देवीदयाल।"

"हां जहांपनाह। एक व्यक्ति मुझ से भी ज्यादा मनहूस है। हुजूर! उसको भी माकूल सजा दी जाय।"

"वह कौन है?"

"शहंशाह जलालुददीन मुहम्मद अकबर।" दरबार में फिर सन्नाटा छा गया। लेकिन दूसरे ही क्षण सेनापतियों ने तलवारे खींच ली।

सभी खामोश रहे, अकबर ने कहा, "बोलो देवीदयाल तुमने ऐसा क्यों कहा?"

"शाहे आलम! गुस्ताखी माफ हो। हुजूर ने मेरा मुंह देखा तो सिर्फ खाना ही न मिला, पर सरकार मैंने भी तो आपका ही मुंह देखा था जिसके कारण मेरी और बुजुर्गों की निशानी

मेरा घर बार सभी छिन रहा है। मैं दर दर की ठोकर खाने को मजबूर हो गया हूं।''

दूसरे ही क्षण अकबर ने अपनी मोतियों की माला देवीदयाल की ओर फेंकी दी! बोला, आराम से यहीं रहो। तुमने हमारी आखें खोल दी। अन्ध विश्वासों से ही बहम पैदा होते हैं। न जाने कितनी बार हमें झंझटों में खाना नहीं नसीब हुआ पर तब तो हमने किसी को भी देश से नहीं निकाला।' बीरबल प्रसन्न हो गया।

—o—

बुराई के बदले भलाई

एक बाबू साहब अपने बंगले में बैठे थे। एक भूखा प्यासा भील वहां आया। भूख के मारे उसकी जान निकल रही थी। उसने खाने के लिए कुछ मांगा। बाबू साहब ने उसे झिड़क दिया और कहा चल हट, यहाँ तेरे खाने के लिए कुछ भी तो नहीं है।' भील ने कहा, 'थोड़ा पानी ही पिला दीजिये' इस पर बाबू साहब बोले, ''उठता है कि हड्डी तोड़ दूं।'' बेचारा भील चल दिया।

कुछ दिनों बाद बाबू साहब जंगल में शिकार खेलने गये। राह भूल गये, भटकते भटकते रात बीत गई। एक झोपडी के पास गये। झोपड़ी के मालिक ने उनको अपने घर पर टिका लिया जो कुछ उससे बना, उनको खिलाया। घास पर कम्बल बिछा कर उनको सुलाया। सबेरा होते उसे पहुंचाया। इस समय भील ने कहा, 'मुझे आप पहचानते हैं?

दोनों की चार आंखें हुई। बाबू साहब समझ गये कि एक दिन इसी को मैंने झिड़क दिया था। उनके मुंह से बात न निकली। इस पर भील ने कहा ''यदि आपके पास कोई भूखा प्यासा आ जाय तो उसे खिलाईये, पिलाईये झिड़क कर न भगायें।''

—o—

बालक की बुद्धि

धर्मपुर नगर के राजा वरधर्म था। और उसकी पत्नी का नाम वरधर्मा! जयदेव नाम का उसका मंत्री था। एक बार वे राजा और मंत्री अपने दल बल के साथ एक शक्तिशालि राजा को जीतने चले। थोड़े ही दिनों में जब उनका शत्रु परास्त हो गया तो वे लौटे। प्रजाजनों ने ध्वजाओं और वन्दनवारों से नगर के बाहर सजावट की। तोरणों से नगर का द्वार सजाया।

परन्तु ज्योंहि नगर की बाहरी दिवाल के प्रमुख द्वार से राजा ने प्रवेश करना चाहा, वह गिर गया। राजा ने सोचा कि यह तो बड़ा अपशकुन है। द्वार फिर बनाया गया पर कई बार बनने पर भी वह द्वार बार–बार गिर जाता।

मंत्री ने सुझाव दिया कि यह कोई देवी का प्रकोप है। एक व्यक्ति की बलि देकर देखें यह ठीक रहेगा।

'चलो यही सही।' राजा ने कहा।

पर बलि किसे दें? यह थी समस्या।

कुछ नागरिकों ने कहा, 'महाराज! यह हम पर छोड़ दीजिये' उन लोगों ने घोषणा कि 'जो व्यक्ति बलि की खातिर मनुष्य देगा उसे एक लाख दीनार देंगे।'

यह घोषणा एक ब्रह्मण ने भी सुनी जिसके सात पुत्र थे। वह बड़ा लालची और क्रोधी था। दरिद्र भी था। उसकी पत्नी. वैसी ही थी।

उन लोगों ने घोषणा सुनी तो पत्नी ने सुझाव दिया कि अपने सात पुत्र हैं। क्यों न इनमें से एक देकर एक लाख मुद्रायें प्राप्त करें? 'जरूर करें।' पति भी खुश हो गया था। और उन्होंने एक लाख मुद्रायें लेकर सबसे छोटा पुत्र दे दिया।

जब लोग उस ब्राह्मण पुत्र को दरवाजे के निकट लाये जहाँ राजा मंत्री सभी खड़े थे तो वह हंसने लगा।

राजा ने पूछा' बालक कुछ क्षणों में तेरी बलि दी जाने वाली है। तू हंस क्यों रहा है।?'

और क्या करूं महाराज! बच्चे को मां मारे तो पिता के पास जाता है। और पिता मारे तो मां के पास जाता है। दोनों मारे तो पुरवासियों से उसे पुकार करनी पड़ती है। और वहां भी सुनवाई न हो तो राजा अवश्य ही न्याय करता है। यहां तो मां-बाप पुरवासी और राजा सभी मेरी नन्हीं सी जान लेने पर उतारू हैं। किससे प्रार्थना करूं! बस यही सोच कर मुझे हंसी आ रही है।' लज्जित हो राजा ने उसे

छोड़ दिया द्वार फिर नहीं गिरा।

—o—

पर दुःख कातरता

ग्रीष्म ऋतु थी। दोपहर का समय था। सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणों के द्वारा धरती को तपा रहे थे। कलकत्ता नगरी के बीच सड़क पर एक बुढ़िया सिर पर एक बड़ा बोझा उठाये चली जा रही थी।

वृद्धावस्था, दोपहर की झुलस देने वाली गर्मी एवं क्षीणकाय दुर्बल शरीर, इन सब ने वृद्धा को थका दिया था। पसीने से लथपथ हाँपती हुई वह आगे बढ़ रही थी। अन्त में गरमी के मारे वह वृद्धा आगे बढ़ने में असमर्थ हो गयी और प्रखर धूप में ही राजमार्ग के किनारे निःसहाय होकर बैठ गई। अनेकों लोग आये गये। किसी ने भी वृद्धा की ओर ध्यान नहीं दिया।

कुछ समय उपरान्त उधर से बाबू यतीन्द्रनाथ झा निकले। यतीन्द्रनाथ पर पीड़ा से हार्दिक क्लेश अनुभव करने वाले भारतीय युवक थे।

उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया के आगे एक बोझा पड़ा है, पर उसे उठाने की उसमें शक्ति नही रह गई है।

यतीन्द्रनाथ तुरन्त वृद्धा के पास गये और बोले—मां तुम आगे आगे चलो—मैं यह बोझा तुम्हारे घर तक पहुंचा आता हूं।

युवक की भावना देखकर वृद्धा गदगद हो उठी और अन्तः करण से उन्हें आशीर्वाद देने लगी। यतीन्द्रनाथ ने वह बोझा उठाकर वृद्धा के घर पहुंचा दिया।

यही नहीं–उन्होंने जब वृद्धा की दीन दशा देखी तो द्रवित हो गये और वे उसे पांच रुपया प्रतिमास देते रहे।

आज के संकुचित स्वार्थ प्रधान युग में, जब कि मनुष्य परमार्थ भावना से तेजी के साथ दूर होते जा रहे हैं। यह सच्ची घटना सच्ची मानवता का चिर–नवीन सदेश सुनाती है। वास्तव में असाहायों की सेवा करना ही सच्चा धर्म है।

—o—

आधा अंग सोने का

चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की पूर्णाहुति दी। सब दिशाओं के राजा महाराजा महाजन सभी लोग महाराज युधिष्ठिर की प्रशंसा कर रहे थें। सब जानते थे कि इतना विराट यज्ञ यही है जिसमें करोड़ों मुद्रायें दान दी गयीं। सभी अतिथियों को मनवांछित भोजन प्राप्त हुआ। भिक्षुकों को अन्न वस्त्र बांटे जा रहे हैं। इस प्रकार चहुं ओर से महाराज युधिष्ठिर की जयँ–जयकार हो रही थी।

इतने में एक नेवला जिसका आधा अंग सोने का सा दीख रहा था ओर आधा अंग भूरे रंग का था। वहां पर पड़ी जूठी पतलों पर लौटने लगा।

चूहे जैसे उस नेवले को देखकर सब लोग दंग रह गये। इतने में नेवला लौट लगाकर एक जगह बैठ गया। किसी

ने उससे पूछा, भई नेवले ! तुम जूठी पत्तलों पर क्यों लेट रहे हो?

नेवला तुरन्त मनुष्य की बोली में बोला। मैंने भी आप सबके समान इस महान् यज्ञ की चर्चा सुनी सो मैं भी अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के निमित्त यहां चला आया।

मेरा आधा अंग सोने का है और आधा भूरे–धूसर रंग का है। मैंने सोचा कि यज्ञ की जूठी पतलों पर लेटने से मेरा दूसरा अंग भी सुनहरा हो जायेगा। किन्तु मेरी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पायी।

राजा ने पूछा, भाई ! यह तेरा दूसरा अंग सुनहरा कैसे हुआ?

इस पर नेवला बोला– महाराज! एक तपोनिष्ठ ब्राह्मण ने 'सत्तू–यज्ञ' किया था। जिसमें मेरा अंग सोने का हो गया था। मैंने सोचा था जब सत्तू के यज्ञ से मेरा आधा शरीर सुनहरा हो गया तो यह तो विराट यज्ञ है इसमें अवश्य ही मेरा शेष शरीर भी सुनहरा हो जाएगा। किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि इस यज्ञ से तो वह सत्तू का यज्ञ ही महान था।

महाराज ने पूछा– वह सत्तू यज्ञ कैसे हुआ था भाई?

नेवला बोला, धर्मदेव–कुरुक्षेत्र में कोई उच्चावृत्ति ब्राह्मण कपोतवत् वृत्ति अवलंबन करते हुए, जीवन यापन करता था। उस सदाचारी–धर्मात्मा द्विजश्रेष्ठ के यहाँ उसकी पत्नी पुत्र पुत्रवधू सहित एक छोटा–सा परिवार था। वह सदैव ही ईश्वर भजन में लीन रहता था। और दिन के छठे भाग में उन सभी के साथ भोजन करता था।

एक बार वहां भयंकर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। दिन के छठे

भाग में भोजन की व्यवस्था न होने से वह बहुत चिंतित हुआ। कि परिवार का भरण–पोषण कैसे होगा? पुत्र, पुत्रवधु भूखे कैसे रहेंगे?

क्योंकि उसके पास न तो धन ही था, न ही और कुछ, जिस से उदर पूर्ति में सहायता हो सकती।

तब वह उच्छवृत्ति ब्राह्मण ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की दोपहरी में प्रचण्ड सूर्य के ताप की तपन को सहता हुआ वहीं पर स्थित एक खेत में से गेहूं जौ इत्यादि बीन–बीनकर इकट्ठा करने लगा।

जब दाना बीन–बीनकर कुछ जौ आदि इकट्ठे हो गये। तो ब्राह्मणी ने उनको भूना और बहू ने उनको पीस कर सत्तू बना दिया।

अब सत्तू को गूंदकर, चार पत्तलों में परोस दिया गया। जल के पात्र रखे थे। 'ब्रह्मार्पण' की तैयारी के लिए जल हाथ में ले लिया था।

इतने में एक ब्राह्मण अतिथि बनकर आ गया और दीनता पूर्ण स्वर में बोला– हे द्विज प्रवरो! मैं बहुत भूखा हूं कई दिनों से मैंने भोजन नहीं किया है। कृपया मुझे कुछ देकर, मेरे प्राण बचालो। मुझे भोजन करा दो।

द्विजश्रेष्ठ अतिथि को देखकर हर्षित हो उठे, और अतिथि देवता को कुटी के मध्य ले आये और बोले– हे अनघ ! आप आनन्द से इस असान पर विराजिये और नियम से उपार्जित इस सत्तू भोजन को स्वीकार कीजिये और तृप्त होइये।

इत्युक्ता प्रति गृह्यार्थ सत्तूनां कुड़वं द्विज।
भक्षया मास राजेन्द्र, न च तुष्टि जगामसः।।

एक कुड़व पत्तल को खाने के बाद भी अतिथि का पेट नहीं भरा और बोले द्विजवर्य्य और कुछ है?

तब वह ब्राह्मण को चिन्ता हुई कि अब किसके हिस्से का सत्तू अतिथि को दे।

ब्राह्मणी बोली, पतिदेव! आप चिंतित न हों, 'अतिथि देव' को मेरा भाग दे दीजिये। जिसे खाकर और सन्तुष्ट होकर अपने गन्तव्य को प्राप्त हो सकें।

ब्राह्मण प्रवर अपनी पत्नी की भावना को जान गये थे। परन्तु उसकी 'भूख' का विचार उन्हें यह कृत्य करने की अनुमति नहीं दे रहा था। पत्नी के अत्यधिक कहने पर उन्होंने उसका भी भाग 'सत्तू' अतिथि को दे दिया।

परन्तु 'अतिथि देव' तो न जाने कब से भूखे थ? वे उसके भाग का सत्तू खाकर भी तृप्त नहीं हुए।

और बोले, विप्रदेव! यदि कुछ और हो तो बहुत अच्छा होगा।

वृद्ध ब्राह्मण के मुख पर पुनः चिन्ता की लकीरें विद्यमान हो गई। वे सोचने लगे–कि अब किसके हिस्से का सत्तू अतिथि को दूं।

तब पुत्र ने पिता को हाथ जोड़ कर उदर स्थित अग्नि को सहन करते हुए कहा– "पिताजी ! आप मेरे हिस्से का सत्तू भी अतिथि महोदय को दे दीजिये इसी में हमारे कर्त्तव्य की पूर्णता है। पुत्र होने का ही यह फल है। क्योंकि वेद के अनुसार– "अनुव्रतः पितुः पुत्रो भवतु समना।" पुत्र को पिता का अनुव्रती होना चाहिए। उसके व्रतों को पालने तथा पूर्ण करने का संकल्प लेना चाहिए। और यही हमारे देश की

सनातन परम्परा है।

ब्राह्मण–पिता अपने पुत्र की बातें सुनकर गद्‌गद हो उठा और बोला– पुत्र! तुम हजार वर्ष के भी हो जाओ परन्तु तुम हमारे लिए तो बालक ही हो। पिता तो अपने पुत्र को जन्म देकर ही अपने आपको कृतकृत्य मानता है। और तुम तो मेरे प्यारे प्राण हो। तुम्हारी भूख हेतु जैसे ये प्रबन्ध किया था। परन्तु अब मुझे चिन्ता है कि तुम भूख को कैसे बरदाश्त कर पाओगे?

मैं तो बूढ़ा हूँ मर भी जाऊँ तो तुम अपनी माता की रक्षा तो कर सकते हो। मुझे अपने मरने का तनिक भी भय नहीं है।

पुत्र बोला, पिताजी 'अतिथि देवो भवः' अतिथि को देवता कहा गया है। हमारे घर से देवता भूखे जायें। यह भी उचित नहीं है।

पुत्र के बार बार आग्रह करने पर द्विजश्रेष्ठ ने उसका भाग भी अतिथि देवता को अर्पण कर दिया।

परन्तु यह क्या? अतिथि अब भी तृप्त नहीं हो पाये। और बोले, द्विजश्रेष्ठ कुछ और हो तो दीजिये।

यह देखकर, पुत्रवधू बोली–पिताजी ! निसंकोच मेरा हिस्सा भी इन सम्माननीय अतिथि को दे दीजिये।

ससुर बोले– बेटी ! हवा और अतिशय गर्मी के कारण तुम्हारा शरीर सूख गया है। भूख से तुम्हारे शरीर का हर अंग शिथिल हो रहा है। कान्ति जो देदीप्यमान रहा करती थी। अब विलुप्त प्राय हो गयी है।

तुम्हारी इसी अवस्था को देखकर भी तुम्हारा हिस्सा कैसे दे दूं?

इस पर एक तो तुम अभी बालिका हो, दूसरे भूखी हो, तीसरे नारी हो, चौथे उपवास करते–करते अत्यन्त शिथिल हो गई हो। अतः मुझे तो तुम्हारी रक्षा करनी चाहिए। तुम्हीं तो अपनी सेवाओं द्वारा बाँधवों को प्रसन्न करती हो।

पुत्रवधु पुनः बोली– पिताजी ! आप मेरे पूज्य हैं, यह मेरा शरीर और प्राण सब धर्न ही के लिए है। आप मेरा हिस्सा भी इनको दे दीजिये।

पुत्रवधू की ऐसी धर्मयुक्त बातें, सुनकर 'वृद्ध विप्र' ने अपनी बहू का हिस्सा भी अतिथि को दे दिया।

इस पर अतिथि प्रसन्न हो गये। उनके इस त्याग और अतिथि सेवा को देखकर, आकाश से देवतागण पुष्प वर्षा करने लगे। तत्क्षण ही स्वर्ग से एक पुष्पक विमान उतरा, और देव गण उस ब्राह्मण परिवार को उसमें बिठा, स्वर्गलोक को ले गये।

अतिथि को भोजन कराते समय जो सत्तू भूमि पर बिखर गया था, उसकी गन्ध सूँघकर मैं अपने बिल से बाहर आया, और वहाँ गिरे सत्तू कणों एवं हाथ धोने के पानी में पवित्रता और पूजा के कणों को मैने लेट–लेट कर अपने शरीर पर लेपा। तत्क्षण की उस ब्राह्मण की महान तपस्या से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया।

परम बुद्धिमान सत्यवादी युधिष्ठिर के यज्ञ की कीर्ति सुन कर ही मैं बड़ी आशा लगाकर आया था कि उनके यहाँ 'यज्ञावशिष्ट' जूठी पत्तलों पर लेटने से मेरा दूसरा अंग भी सोने का हो जायेगा। परन्तु इस यज्ञ में मेरा शरीर सोने का न हो सका।

परन्तु हे श्रोताओं! यह यज्ञ ब्राह्मण के 'सत्तू' यज्ञ के बराबर भी नहीं हो पाया है।

"दानेन पाणिर्नतु कंकणेन"

"हाथ की शोभा दान से है, कड़े से नहीं।।"

—o—

निर्मोही परिवार

एक तपस्वी, राग द्वेषों से सर्वथा विमुक्त, एक जंगल में तपस्या करते थे। उन्होंने सुना हुआ था कि उस देश का राजा और उसका सम्पूर्ण परिवार भी, वीतराग तथा ममता मोह से रहित है।

एक दिन उन्होंने सोचा, कि इस परिवार की परीक्षा लेनी चाहिए। वे अपने आश्रम से उस निर्मोही परिवार की परीक्षा लेने चल पड़े। जब वे शहर में पहुँचे तो सामने से एक औरत आ रही थी। उन्होंने उस औरत से राजमहल का रास्ता पूछा। और यह भी पूछा कि आप कौन हैं?

औरत ने कहा– मैं राजमहल तथा राजपरिवार की दासी हूँ।

तपस्वी ने पूछा– राजपरिवार में कौन–कौन हैं तथा कहाँ हैं? दासी ने प्रत्युत्तर में सबके विषय में बताया। तपस्वी के पूछने पर कि राजकुमार कहाँ है? तो वह बोली कि वे तो शिकार खेलने गए हैं।

योगी ने कुछ विचारकर शोक संतप्त–सा चेहरा बना लिया। और बोले– ऐ दासी! राजकुमार तो जंगल में मारे गये।

तू सुन चेरी कंवर की, बात सुनाऊँ तोहि।
कुंवर विनाशो सिंह ने, आश्रम पर मोहि।।

उत्तर में दासी बोली'

ना मैं चेरी कुंवर की, नाहिं कोई मेरा श्याम।
प्रारब्धा का बस यह मेल है, सुनो ऋषि अभिराम।।

ऋषिवर उसके कथन का अभिप्राय जानकर, महल के अन्दर चले गये। अन्दर जाने पर राजकुमार की पत्नी मिली। उसने मुनि को प्रणाम किया। ऋषि ने पूर्ववत अपना मुख चिंतातुर बनाते हुए कहा, बेटी राजकुमार को जंगल में सिंह ने मार डाला।

यह सुनकर युवराज–राजकुमार की पत्नी बोली– मुनिवर ! आपके मुख से यह शोक कैसा? हमारा संयोग पूर्वजन्म के संस्कारों एवं दैव कृपा से हुआ था। अब उसी दैव की कृपा से हमारा वियोग भी हो रहा है। इसमें दुःख कैसा?

यतिवर ने यह सुनकर राजमाता से भेंट की इच्छा प्रकट की। युव रानी ने राजमाता से उनकी भेंटकरा दी।

यति बोले रानी ! आपको यह जानकर अत्यन्त दुःख होगा, कि आपके पुत्र को जंगल में 'मृगराज' ने अपने उदर का भोजन बना लिया है। अर्थात समाप्त कर दिया है।

रानी ने यह बात सुनकर कहा, ऋषिवर ! यह संसार तो

एक वृक्ष है, जिसकी असंख्य शाखों में नए—नए पंछी आते हैं, और फुर्र—फुर्र उड़ भी जाते हैं और यह चक्र सदा से चलता रहा है, और इसी प्रकार चलता रहेगा।

यति बोले— मैं महाराज को और यह सन्देश देना चाहता हूं।

रानी बोली जाइए और उन्हें यथाविधि संदेश दीजिए।

योगी प्रवर महाराज के पास गए और पूर्ववत् शोक—संतप्त होकर कहने लगे।

महाराज धैर्य व ह्रदय थामकर मेरी बात सुनिए, और राम नाम का जाप कीजिए।

यह सुनकर महाराज हँसे, और बोले— ऋषिवर ! आप अपने तप को छोड़ कर क्यों संतप्त हो रहे हैं। यह संसार तो एक सराय है, इसमें कभी मुसाफिर आते हैं, तो कभी जाते हैं। और फिर—

शोकेन परितापेन, रोदनेन न च भूपते।
न मृतः पुनरायाति, तस्मात् शोको निरर्थकः।।

शोक करने से, सन्ताप करने से क्या मृत शरीर जीवित हो सकता है?

इसीलिए शोक सर्वथा निरर्थक है।

योगी जान गये कि यह परिवार निर्मोही है, यह संसार के 'यथार्थ' को प्राप्त कर चुका है। योगी उस परिवार को शतषः आशीष देते हुए अपनी कुटिया को लौट आए।

स्वर्ग का द्वार

यह कथा महाभारत के समय की है। महाभारत युद्ध के पश्चात् पांडवों को राज्य तो मिला गया किन्तु गोत्र के सगे भाई बान्धवों को मारकर पाँडवों का मन खिन्न रहने लगा। और जब यह खिन्नता दुःख में परिवर्तित हो, असहनीय हो गई तब महाराज युधिष्ठिर खिन्न—मन से व्यास जी के पास पहुँचे। और प्रणामादि कर अपने मन की व्यथा उनके समक्ष प्रकट करने लगे।

'गुरुवर ! मैं अपने भाई—बन्धुओं का समरांगण में विनाशकर अत्यन्त दुखी हूं। क्योंकि गोत्र हत्या, गोहत्या, और ब्रह्महत्या तीनों एक समान हैं, और यह पाप हमें लग चुका है। इस पाप से हम कैसे विमुक्त होंगे। कैसे बचेंगे कृपया बताइये।

व्यास जी उनकी इस व्यथित प्रार्थना को सुनकर, चिंतित हुए और कुछ देर विचार कर बोले, राजन ! तुम हिमालय चले जाओ और वहाँ बर्फ से अपनी देह को गला दो। तभी इस परिजन—सम्बन्धियों की हत्या के पाप से तुम मुक्त हो पाओगे हिमालय में देह गलाने से जो फल प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में तुम्हे एक इतिहास सुनाता हूँ। ध्यान से सुनो—

एक गांव में एक पंडित जी रहते थे वे प्रतिदिन एक राजा के यहां जाकर भागवत् आदि धर्म ग्रंथों का पाठ करते, और दक्षिणा पाकर अपने घर लौट जाते थे। इसी तरह उनका जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

एक दिन जब पंडित जी राजमहल में कथा सुनाकर घर

वापस आ रहे थे तो मार्ग में एक भयंकर नाग पंडित जी को देखकर बोला– हे दीन दयालु पंडित जी ! मैं भी हरिलीला के अमृत रस 'भागवत' का श्रवण करना चाहता हूं। कृपया मुझे भी इसके मधुर रस का पान कराइये। मैं आपका बहुत–बहुत आभारी रहूँगा।

पंडित जी उस नाग को 'मनुष्य' वाणी में बोलते देखकर आश्चर्यचकित हो गए। तथा उस नाग को भगवत् भजन में उत्कट अभिलाषा देखकर, उन्होंने बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से प्रेम पूर्वक भागवत् की कथा का एक अध्याय सुनाया। कथा सुनाकर जब पंडित जी चलने को उद्यत हुए, तो नाग ने दक्षिणा स्वरूप एक सोने की मोहर उनको प्रदान की। पंडित जी उस मोहर को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर क्या था पंडित जी प्रतिदिन ही उस नाग को भागवत् की कथा के अमृत रस का पान कराते।

नाग पंडित जी के द्वारा ज्ञान की गंगा में स्नान करते–करते इस संसार के माया–मोह को मिथ्या समझने लगा था। उसका अंतः करण वैराग्य की रसधार में सराबोर होकर प्रभु चरणों में बस जाने को विह्ल हो रहा था।

इधर नाग तो ज्ञान के अनमोल खजाने को प्राप्त कर हर्षित हो रहा था उधर पंडित जी भी प्रतिदिन एक चमचमाती स्वर्ण मोहर को पाकर स्वयं को धन्यभाग्य ! समझने लगे थे।

एक दिन नाग पंडिज जी से बोला, विप्रवर ! आप को तो धन की आवश्यकता है अतः मेरे पास अशरफियों का विशाल भंडार है। वह आप स्वीकार कर अपने घर ले जायें। परन्तु इसके बदले में आप मुझे भगवान बद्रीनाथ के दर्शन

करा लाईये। पंडित जी ने प्रसन्न होकर स्वीकृति दे दी। नाग ने तत्काल ही अशरफियों का खजाना पंडित जी को समर्पित कर दिया।

यात्रा प्रारम्भ हुई और दोनों बद्रीनाथ धाम पहुँच गए। भगवान विष्णु के दर्शन कर नाग के मन में वैराग्य प्राप्ति की भावना अत्यन्त प्रबल हो उठी। अतः वह बोला पंडित जी हिमालय के और निकट चलिए।

पंडित जी उसको हिम से आच्छादित एक ऊँचे शिखर पर ले गए।

इस समय नाग के मुख पर सन्तोष की आभा चमक रही थी। वह बोला पंडितजी आज मेरी सब मनोकामनायें पूर्ण हो गई। कृपया मुझे थोड़े से सहारे से इस शीत–माला में और प्रवेश करा दीजिये।

पंडित जी ने पुनः उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर, उसको बर्फीली उपत्यकाओं में प्रवेश करा दिया।

दोहा– विप्र चलायो नाग कह गिरो हिवारे जाय।
विप्र चला घर आपने हस्यो नाग ठठहाय।।

नाग की इस आकस्मिक हंसी को देखकर पंडित जी ने आश्चर्य से उसकी इस हँसी का कारण पूछा।

नाग बोला, सुनिए पंडित प्रवर! मैं क्यों हँसा? इसका भेद मैं स्वयं तुमको नहीं बताऊँगा। यह तो तुमको काशीपुरी के राजा से ज्ञात होगा। अतः तुम उन्हीं नृपश्रेष्ठ के पास जाकर मेरी इस हँसी के रहस्य को जानो।

पंडित जी को तो इस रहस्यमी हँसी ने विकल कर दिया

था। इसलिए वे नाग की बात सुनकर, तत्काल ही काशीपुरी की ओर चल पड़े और कुछ दिनों में वे वहाँ पहुँचे, राजदरबार चल रहा था। अपने आने का कारण बताया।

राजा हँसकर बोले, पंडित जी नाग की हँसी का भेद बताता हूं, ध्यान से सुनो।

तीन वैष्णव ब्राह्मण, एक दिन घूमते—घूमते एक आश्रम में पहुँचे। भोजन का समय था। अतः भोजन की व्यवस्था के उपरान्त तीनों भोजन करने बैठे, इतने में एक श्वान (कुत्ता) भी न जाने कहां से घूमता—घामता चला आया। उन्होंने उसे भी रोटी देकर सन्तुष्ट किया और भोजन से निवृत्त हो पुनः अपनी अगली यात्रा हेतु चल पड़े।

उनके पीछे—पीछे जव श्वान भी चलने लगा तो वे वैष्णव ब्राह्मण उसको समझा कर बोले ! रे श्वान! तुम हमारे पीछे—पीछे कहाँ जाओगे?

हम तो यात्री हैं। हमारी यात्रा भी बहुत लम्बी है और तुम्हारी यह जन्म भूमि है इसे छोड़ कहाँ चले। अतः तुम यहीं रहो।

श्वान (कुत्ता) बोला, हे विप्रश्रेष्ठों।

जहाँ मिले मम उदर अहार।
सोई है निज धाम हमारा।।

मुझे तो जहाँ भोजन मिलेगा, वहीं मेरा घर बार, जन्म भूमि इत्यादि होंगे। अतः तुम इस बात की चिंता न करो। यह कह कर वह उनके पीछे चल दिया।

इस प्रकार वे जहाँ जाते वह श्वान सदैव उनके साथ रहता चलते—चलते उन विप्रों ने हिम श्रेणियों की प्रदक्षिणा की और

वे क्रमशः उसी में प्रवेश कर अमर पद को प्राप्त हो गए। श्वान भी उन्हीं का अनुकरण कर, उन्हीं हिम श्रेणियों में प्रवेश कर गया। और उस श्वान ने कहा, मेरा जन्म सफल हुआ। इस प्रकार यह जान लो हिमालय में देह गलाने से ही मुझे सुन्दर देह तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है।

इसलिए पंडित प्रवर ! तुम भी उसी बद्रीश भगवान का स्मरण किया करो।

नाग की हँसी आप की अज्ञानता का ही एक कारण है। उसने सोचा कि यह पंडित कितना मूर्ख है। जो कुछ अशर्फियाँ लेकर स्वर्ग का त्याग कर गया। परमात्मा के अनूठे आनन्द को छोड़कर, न जाने क्यों पुनः उसी प्रपंची संसार में लौट गया। न जाने इसे वहाँ क्या मिलेगा।

यह उसके जीवन की तथा मेरे उद्धार की सत्य कथा है। जो मैंने आपको सुनाई है। यह सारी महिमा हिमालय की ही है।

युधिष्ठिर ने जब यह सारा वृत्तान्त सुना तो उन्होंने भी हिमालय में जाकर अपने शरीर का अन्त करने की तथा उसी में गलने का निश्चय किया। इस हेतु उन्होंने परीक्षित को बुलवाया और उसका राज्याभिषेक कर नीति सम्बन्धी ज्ञान का उपदेश किया।

तदुपरान्त व्यासदेव जी से आज्ञा प्राप्त कर अपनी 'बद्रीश' प्राप्त्यर्थ यात्रा प्रारम्भ कर दी।

राजा युधिष्ठिर अपने सब भाइयों के साथ मन—कर्म—वचन की शुद्धता लिए हुए हरिद्वार आ पहुँचे।

—o—

सर्वतोभद्र साधुराज

इस प्रकार अनेक निर्ग्रन्थ साधुओं, साध्वियों, श्रावकों, श्राविकाओं गृहस्थों आदि के अन्तः करणगत विचारों से भी वह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है, कि आचार्य शान्ति सागर महाराज महान योगिराज थे। तपोमूर्ति थे। उनका जीवन अपूर्व आध्यात्मिक प्रकाश से दीप्तिमान था। वे आध्यात्मिक ज्योति थे। उनके विशुद्ध जीवन से गणनातीत भव्यात्माओं ने आत्मकल्याण की मंगलमय प्रेरणा प्राप्त की थी। उनका व्यक्तित्व महान था। उनके पवित्र संपर्क को पाकर मोही प्राणी वीतरागता के पथ पर चलने को स्वयमेव तत्पर हो जाता था।

उनका जीवन मलयागिरि के श्रेष्ठ चन्दन तुल्य था। उनके समीप पहुँचनेवाला संतापमुक्त बनता था, साथ ही उसकी आत्मा में पवित्रता का सौरभ भर जाता था। उनके शरीर पर अनेक बार सर्पराज लिपटे थे, जो यह द्योतित करते थे, कि शान्तिसागर महाराज वास्तव में चंदन तुल्य महिमा संपन्न सज्जनोत्तम थे, क्योंकि सर्पसमूह का चंदन प्रेम प्रसिद्ध है।

महान तत्वज्ञानी

मोक्षमार्ग की दृष्टि से जीवन की परिपूर्णता के लिए आत्मोपलब्धि आत्मबोध एवं आत्मनिमग्नता रूप रत्नत्रय की अखण्डमैत्री आवश्यक है। उनकी वाणी तथा विविध प्रवृतियों के विष्य में आगम के प्रकाश में विचार करने पर यह स्पष्ट

होता था, कि वह आत्मा तत्व दृष्टि समलंकृत थी। आप्त, आगम, तथा वीतराग धर्म के प्रति उनके अन्तःकरण में सुदृढ़ श्रद्धा थी, इसके लिए उनका सर्वांगीण जीवन दर्पण का कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। वैसे सूक्षमदृष्टि से सोचा जाय, तो सम्यग्दर्शन अत्यन्त सूक्ष्म है। वह वाणी के अगोचर है। वह केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अथवा परमावधि, सर्वावधिज्ञान गोचर कहा गया है। पंचाध्यायी में लिखा है–

सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।
गोचरं स्वावधि स्वान्तपर्यय ज्ञानयोर्द्वयोः।।३७५।।

वह सम्यक्त्व मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अथवा देशावधि ज्ञान के अगोचर है। पांचाध्यायीकार कहते हैं–

न गौचरं मतिज्ञान–श्रुतज्ञान–द्वयोर्मनाक्।
नापि देशावधेस्तत्र विषयानुपश्चितः।।३७६।।

किसी के बौद्धिक विकास अथवा वाणी–विलास के आधार पर भी उसके अन्तः करण को सम्यक प्रकार से समझना संभव नहीं है। पंचाध्यायी में लिखा है–

अस्ति चैकादशांगानां ज्ञानं मिथ्यादशोपि यत्।
नात्मोपलब्धिरस्यास्ति मिथ्याकर्मोदयात् परम्।।१६६२।।

मिथ्यात्वी जीव के आचारांगादि एकादश अंगों का ज्ञान होते हुए भी आत्मा का अनुभव नहीं होता है, क्योंकि उसके मिथ्यात्व प्रकृति का उदय पाया जाता है।

ऐसी स्थिति में सुन्दर लेखक, वक्ता, गायक, कवि आदि होते हुए भी व्यक्ति की आत्मा मिथ्यात्व पंक से विमुक्त है,

ऐसी कल्पना दृढ़तापूर्वक नहीं की जा सकती है, फिर भी स्थूल रीति से प्रशम, संवेग, अनुकम्पा तथा आस्तिक्य गुणों के द्वारा दूसरे के तत्वज्ञान के विषय में विचारक वर्ग को सोचने, समझने में सहायता प्राप्त होती है। कुछ तो ऐसी बातें कहीं गई हैं, जिनसे क्षण भर में मिथ्यात्व के विकार का सदभाव सूचित होता है। ऐसी प्रसिद्धि है–

सर्प डस्यो जब जानिये, रुचिकर नीम चबाय।
कर्म डस्यो जब जानिये, जिनवाणी न सुहाय।।

आचार्य श्री का जीवन

हमने इस आध्यात्मिक ज्योति में विविध व्यक्तियों के विचारों को उनके शब्दों में निबद्ध किया है। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शान्तिसागर महाराज प्रशममूर्ति थे। उनका जीवन वैराग्य भाव से परिपूर्ण रहा है, अतः संवेगभाव भी उनमें था। त्रस स्थावर जीवों के प्रति कारुण्य भाव धारण कर अहिंसा महाव्रत को अंगीकार करने के कारण उनके उच्च अनुकम्पा भाव स्वयंसिद्ध होता है। जिनेन्द्र की वाणी पर उनकी श्रद्धा लोकोत्तर थी। उस आगम पर श्रद्धा रहने के कारण ही ईर्ष्या आदि समितियों की रक्षार्थ उन्होंने शरीर के सशक्त रहते हुए भी समाधिमरण रूपी दुर्धर तपः साधना को स्वीकार कर परम शान्तिपूर्वक प्राणों का परित्याग किया।

धर्मध्यान

आर्तध्यान, रौद्रध्यान का त्याग कर उन्होंने धर्मध्यान को स्वीकार किया था। इस समय शुक्लध्यान भरतक्षेत्र में नहीं होता है। कुंदकुंदस्वामी ने लिखा है–

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेई साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सोवि अण्णाणी।।७६।।मोक्षपाहुड़।

इस भरतक्षेत्र में इस पंचमकाल में मुनि के धर्मध्यान होता है। यह ध्यान आत्म–स्वभाव में स्थित मुनि के होता है। इस बात को जो नहीं मानता है वह व्यक्ति भी अज्ञानी है।

आगमोक्त आचरण

आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज आगम के हृदय को भली प्रकार समझते थे, अतः वे शुभोपयोग से संबंध रखने वाले अन्य कार्यों में भी योगदान करते थे। कुंथलगिरि में यम–सल्लेखना लेने पर भी वे प्रतिदिन १००८ भगवान देशभूषण, कुलभूषण स्वामी का पंचामृत अभिषेक देखकर निर्मलता प्राप्त करते थे। ऐसी श्रेष्ठ तपस्या के समय पर उन गुरुदेव का अभिषेक–दर्शन धार्मिक वर्ग को यह सूचित करता है, कि उक्त अभिषेक पद्धति पूर्णतया आगम–सम्मत है। वह पंथ विशेष की वस्तु नहीं है। आत्मकल्याण के प्रेमियों को आचार्य महाराज के जीवन में अपनी भ्रमपूर्ण पंथगत धारणा में सुधार करना चाहिए। यह बात स्थूल बुद्धि व्यक्ति भी सोच सकता है, कि उस तपश्चर्या काल में शान्तिसागर

महाराज अपने प्राणधिक आगम के अनुसार प्रवृत्ति कर रहे थे। जो पक्षांध व्यक्ति यह सोचे, कि महाराज दक्षिण के थे, अतः वे ऐसा करते थे, वह भ्रम में हैं। वे गुरुदेव न दक्षिण के थे, न उत्तर के, वे तो आगम के थे। अतएव आचार्य महाराज की महत्ता को स्वीकार करने वालों को पक्ष की ममता त्याग कर गुरुदेव के जीवन से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

पुण्य संचय

खेद है कि लोग आमग के सिंधु में अवगाहन बिना किए ही स्वेच्छानुसार कल्याण करते हैं। बड़े–बड़े आचार्यों ने गृहस्थों को पुण्य संचय का उपदेश दिया है। गृहस्थावस्था में धर्मध्यान रूप शुभोपयोग ही संभव है, जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है, अतः पुण्य संचय की ओर गृहस्थ की जीवन धारा को प्रवृत कराना पूर्णतया उचित हे। आश्चर्य है कि गृहस्थ पुण्य रूप वृक्ष के फलों को संचय करना चाहता है, उनका रस पान करने को लालायित रहता है, उसमें ही अपना प्रायः सारा समय व्यय करता है, किन्तु उस वृक्ष की निन्दा करता है, उसकी जड़ को पुष्ट करने के बदले में उसे क्षति पहुंचाने की अभद्र चेष्टा करता है।

पाप पुण्य में भेद

गृहस्थों को यह जानना चाहिए कि स्याद्वाद शासन में पुण्य पाप को आध्यात्मिक दृष्टि से जहां समान कहा है, वहां उन दोनों के भेद को भी स्वीकार किया गया है। जिनने

समयसार की देखा है, उनको अकलंक स्वामी का राजवार्तिक भी पढ़ने को कष्ट करना चाहिए। जहां अनेकान्त दृष्टि को इस प्रकार खुलासा किया गया है। "उभयमपि पारतंत्र्य हेतुत्वादविशिष्ट मिति चेन्नेष्टा निमित्तभेदात्तत्सिद्धे–" शंकाकार कहता है पुण्य तथा पाप दोनों ही समान हैं, क्योंकि दोनों जीव की परतंत्रता के कारण हैं। इस पर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा कथन ठीक नहीं है। इष्ट तथा अनिष्ट निमित्त भेद से उन दोनों में भिन्नता है। 'यदिष्ट–गति–शरीरेन्द्रिय विषयादिनिर्वर्तकं तत्पुणयं। अनिष्टगति– जाति–शरीरेन्द्रिय–विषयादिनिर्वर्तकं यत्तत्पापमित्यनयोरयं भेदः।" जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इंद्रिय, विषयादि का कारण है, वह पुण्य है और जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर, इंद्रिय, विषयादि का कारण है, यह पाप है। इस प्रकार पुण्य–पाप में भेद है।

विवेक दृष्टि

संसार में जहां असली रत्न रहता है, वहां नकली रत्नों का ढेर भी पाया जाता है। जौहरी व्यक्ति अपनी कुशलता के द्वारा असली, नकली का भेद जान लेता है। इसी प्रकार आज बहुत से अपने को सम्यक्त्वी कहने वालों तथा समझनेवालों की संख्या को देखकर आगम ज्ञाता समझ सकता है कि इनमें कौन किस प्रकार है? जो प्रशम भाव के स्थान में अहंकार, माया आदि कषायों की मूर्ति हों, जो संसार से डरने के बदले में सत्कार्यों से डर कर दूर भागते हों, क्रूर स्वभाव, क्रूर आचार, क्रूर विचारादि के कारण जिनके

जीवन मं अनुकम्पा का लेश भी न हो तथा जो आगम की आज्ञा का तिरस्कार कर स्वयं नवीन आगम (?) बनाने की प्रवृत्ति में संलग्न हों, ऐसी आस्तिक्यशून्य आत्मा में सम्यक्त्व का सदभाव सोचना बकराज! को हंस मानने सदृश अविवेकपूर्ण बात होगी। कहां हंस और कहां बकराज! दोनों का वर्ण धवल है, किन्तु दोनों की परणति भिन्न–भिन्न है। इसी प्रकार कहाँ आचार्य शान्तिसागर महाराज में पाए जाने वाले सम्यक्त्व के सभ्द्रावसूचक प्रशम, संवेगादि भाव और कहाँ अहंकार मूर्ति और प्रतारणा पण्डित प्रशमादि शून्य व्यक्ति के परिणाम! " कहाँ काग वाणी, कहाँ कोयल की टोर है।"

लोकोत्तर महात्मा

विचारक व्यक्ति आचार्य महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाले सैकड़ो पृष्ठ वाले 'चारित्रचक्रवर्ती' ग्रन्थ तथा 'आध्यात्मिक ज्योति' के माध्यम से उनके लोकोत्तर जीवन की एक समधुर झांकी प्राप्त कर सकता है। यद्यपि वे गुरुदेव चले गए। अब उनका पुनदर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ हो गया, फिर भी उनके जीवन की घटनाओं पर गंभीरता पूर्वक दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जायगा, कि आचार्य शांतिसागर महाराज कितने महान थे, कितने तेजस्वी थे, कितने पवित्र थे, कितने जितेन्द्रिय थे कितने बड़े परीषह–विजेता थे, कितने बड़े सद्धर्म–प्रभावक विभूतिमान पुरुषसिंह थे? उनकी छत्तीसदिन पर्यन्त सल्लेखना ने पापी, पतित, हीनाचरणी खलराजों के अन्तः करण पर भी उनकी

पवित्रता तथा श्रेष्ठता की मुद्रा अंकित कर दी। छत्तीसगुण वाले आचार्य परमेष्ठी की छत्तीस दिवसीय समाधि अलौकिकता पूर्ण थी।

आध्यात्मिक प्रहरी

वे इस परम सत्य को भली प्रकार जानते थे, कि मोक्षमार्ग का मूल भेद–विज्ञान है। इस महान विद्या की प्राप्ति हेतु वे आत्मचिंतन के लिए प्रेरणा देते थे। तथा आध्यात्मिक करुणा मूर्ति–प्रहरी के रूप में जीव के संयम रत्न को चुराने वाले विषय–कषायों से सावधान रहने के लिए सदाचार की ओर भी वे लोगों का ध्यान आकर्षित करते थे। उनका अनुभव महान था। वे नरभव की दुर्लभता, अपूर्वता तथा महत्ता को पूर्णतया जानते थे, साथ ही जीवन की क्षणिकता से भी वे अपरिचित नहीं थे। कवि ने ठीक ही कहा है:–

आयु घटत है रातदिन ज्यों करोत तें काठ।
हित अपना जल्दी करो पड़ा रहे सब ठाठ।।

इसलिए वे गुरुदेव अपने पास आने वालों को व्रतादि दान द्वारा उपकृत करते थे। उनका आत्मतेज तथा तपस्या का प्रभाव इतना अधिक था, कि उनके पास आने वाला भव्य जीव स्वमेव उनसे कुछ न कुछ व्रत नियम लेता था।

—o—

आश्चर्यप्रद् व्यक्तित्व

आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज की वाणी में जादू था। जहां छोटा सा भी नियम लेना असंभव दिखता है, वहां उनके प्रभाव से संपूर्ण परिग्रह का त्याग करने वाले अनेक महामुनि दिखने लगे। श्रेष्ठ संयम की ओर लोगों का मन आकर्षित करने की अत्यन्त कठिन काम सरल हो गया। उन्होंने उच्च मुनि परंपरा की पुनः प्राण–प्रतिष्ठा की। उनके ही व्यक्तित्व का प्रभाव है, जो उनके स्वर्गवासी बनने के पश्चात् भी अनेक स्त्री–पुरुष उच्च संयम को स्वीकार कर मनुष्य जन्म को सफल करते हुए सर्व साधारण का जीवन सुवास–संपन्न कर रहे हैं। चारित्र रूपी चक्र को संचालित करते हुए वे ऋषिराज धर्म के चक्रवर्ती होते हुए भी चारित्र–चक्रवर्ती रूप में दृष्टिगोचर होते थे।

—o—

युग निर्माता

वर्षा ऋतु में यत्र तत्र जल का प्रवाह ही नयन गोचर हुआ करता है, इसी प्रकार आज जहां देखो वहां भ्रष्टाचार तथा असंयम पूर्ण प्रवृति दिखाती है, ऐसे वातावरण में सयम का भाव लोगों के अन्तः करण में अंकित करना आचार्य महाराज की अपूर्व सामर्थ्य को सूचित करता है। उन्होंने

एक नवीन युग का निर्माण किया था। यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आचार्य महाराज ने भद्र परिणामों से जीवों को आचार–विचार शुद्धि के क्षेत्र में अद्‌भुत जागृति कराई। सैकड़ों वर्षो से गृहस्थ लोग मुनि जीवन को वर्तमान काल में असंभव मान बैठे थे। विद्वान तथा कवि लोग अपनी रचनाओं में हीन संहनन आदि का विचार किए बिना वज्रवृषभ संहननधारी चतुर्थकालीन मुनियों को दृष्टि पथ में रखकर मुनि जीवन को असंभव सोचा करते थे। प्रतिमा धारी श्रावक का पद प्राप्त करना अत्यन्त कठिन बताया जाता था। गृहस्थों को यह पता नहीं था, कि कौन क्रियाएँ मुनि जीवन से संबंध रखती हैं और किन क्रियाओं का पालन श्रावकाचार का अंग है। दक्षिण प्रान्त में कहीं कहीं दिगम्बर मुनि थे, तो वे मूलगुणों का पालन भी नहीं जानते थे।

—o—

अभयवाणी

संयम के क्षेत्र की अद्‌भुत स्थिति थी। ऐसी सदाचार के मार्ग में कंटाकाकीर्ण परिस्थिति में आचार्य महाराज ने अपने जीवन तथा वाणी द्वारा भव्यों का अवर्णनीय कल्याण किया। उन्होंने कहा "घबड़ाते क्यों हो, यह पंचमकाल अवश्य है, किन्तु अभी पंचम काल के केवल अढ़ाई हजार

वर्ष व्यतीत हुए हैं। शेष साढ़े अठारह हजार वर्ष पर्यन्त धर्म रहेगा। जब तक मुनि जीवन रहेगा। पंचमकाल इक्कीस हजार वर्ष का भगवान ने कहा है। इस काल के अंत तक मुनि पाए जावेंगे अंतिम मुनि के अवधिज्ञान भी पाया जायगा। ऐसा आगम का आदेश है। जो जीव दर्शन मोह के तीव्र उदय से आक्रान्त हैं, वे इन बातों में श्रद्धा नहीं करते।

—o—

मंगलवाणी

श्रेष्ठ तीर्थ सम्मेदशिखर पर कहे गए उन निर्ग्रन्थ सदगुरुदेव के ये मार्मिक शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे– 'संयम पालन करने में भय नहीं करना चाहिए। आत्मा कभी नहीं मरती। चारित्र को उज्जवल रखकर कभी भी मरना अच्छा है। चारित्र को मलिन बनाकर दीर्घजीवी बनना ठीक नहीं है।'' उन्होंने इस उपदेश के अनुसार आचारण करके यह स्पष्ट कर दिया, कि जीवन निधि की अपेक्षा संयम रत्न विशेष महत्वपूर्ण है। उन ऋषिराज का दिव्यजीवन आचार्य पूज्यपाद के इन शब्दों की ओर समस्त विश्व का ध्यान आकर्षित करता हुआ प्रतीत होता है–

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म–संग्रहः।।

—शरीर विनाशशील है, वैभव अल्पकाल स्थायी है, मृत्यु सदा समीप है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए।

कामना

आचार्य शान्ति सागर जी महाराज सदा अनेकान्त दृष्टि का पोषण करते रहे हैं। ये स्याद्वाद रूपी उपवन की रक्षा करने वाले श्रुत भक्त सत्पुरुष थे। उनकी महिमा का जितना वर्णन किया जाय, उतना थोड़ा है। यर्थाथ में वे गुरुदेव संसार सिंधु में डूबते हुए जीवों की रक्षा करने वाले नाविक थे। वे यद्यपि स्वर्गीय निधि बन गए, फिर भी उनकी पवित्र स्मृति मुमुक्षु वर्ग का अपार कल्याण करती रहेगी। उच्च समाधि मरण द्वारा अपने दुर्लभ नर जन्म को कृतार्थ करने वाले परम गुरु क्षपकराज शान्ति सागर जी महाराज के पुण्य चरणों को शतशः प्रणाम है। जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है:–

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धांतवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि सन्यसनसमन्वितं मरणम्।।

— हे देव ! जहां अनेक साधुओं का समुदाय विद्यमान हो, ऐसे आचार्य के समीप अथवा जिन प्रतिमा के समीप अथवा जहां सिद्धान्त रूपी समुद्र की पुण्य घोषणा श्रवणगोचर होती हो, ऐसे स्थानों में जन्म जन्म में मेरे समाधि सहित मरण हों।